

॥श्री॥

॥ज्ञानेश्वरी॥

अध्याय पहिला

श्रीगणेशाय नमः। ॐ नमो जी आद्या। वेदप्रतिपाद्या। जय जय स्वसंवेद्या। आत्मरूपा ॥१॥ देवा
तूंचि गणेशु। सकलमतिप्रकाशु। म्हणे निवृत्तिदासु। अवधारिजो जी ॥२॥ हें शब्दब्रह्म अशेष। तेचि
मूर्ति सुवेष। तेथ वर्णवपु निर्दोष। मिरवत असे ॥३॥ स्मृति तेचि अवयव। देखा अंगीकभावा। तेथ
लावण्याची ठेव। अर्थशोभा ॥४॥ अष्टादश पुराणें। तींचि मणिभूषणें। पदपद्धती खेवणें। प्रमेयरत्नांचीं
॥५॥ पदबंध नागर। तेंचि रंगाथिलें अंबरा जेथ साहित्य वाणें सपूरा उजाळाचें ॥६॥ देखा काव्यनाटका।
जें निर्धारितां सकौतुका। त्याचि रुणझुणती क्षुद्रघंटिका। अर्थध्वनि ॥७॥ नाना प्रमेयांची परी।

निपुणपणें पाहतां कुसरी। दिसती उचित पदें माझारीं। रत्नें भलीं ॥८॥ तेथ व्यासादिकांच्या मती।
तेचि मेखळा मिरवती। चोखाळपणें झळकती। पल्लवसडका ॥९॥ देखा षड्दर्शनें म्हणिपती। तेचि
भुजांची आकृती। म्हणऊनि विसंवादे धरिती। आयुधें हातीं ॥१०॥ तरी तर्कु तोचि फरशु। नीतिभेदु
अंकुशु। वेदान्तु तो महारसु। मोदकु मिरवे ॥११॥ एके हातीं दंतु। जो स्वभावता खंडितु। तो
बौद्धमतसंकेतु। वार्तिकांचा ॥१२॥ मग सहजें सत्कारवादु। तो पद्मकरु वरदु। धर्मप्रतिष्ठा तो
सिद्धु। अभयहस्तु ॥१३॥ देखा विवेकवंतु सुविमळु। तोचि शंडादंडु सरळु। जेथ परमानंदु केवळु।
महासुखाचा ॥१४॥ तरी संवादु तोचि दशनु। जो समताशुभ्रवणु। देवो उन्मेषसूक्ष्मेक्षणु। विघ्नराजु
॥१५॥ मज अवगमलिया दोनी। मीमांसा श्रवणस्थानीं। बोधमदामृत मुनी। अली सेविती ॥१६॥
प्रमेयप्रवाल सुप्रभा। द्वैताद्वैत तेचि निकुंभा। सरिसे एकवटत इभा। मस्तकावरी ॥१७॥ उपरि
दशोपनिषदे। जियें उदारे ज्ञानमकरंदें। तियें कुसुमें मुगुटीं सुगंधें। शोभतीं भलीं ॥१८॥ अकार
चरणयुगुल। उकार उदर विशाल। मकार महामंडल। मस्तकाकारें ॥१९॥ हे तिन्ही एकवटले। तेथें
शब्दब्रह्म कवळलें। तें मियां गुरुकृपा नमिलें। आदिबीज ॥२०॥ आतां आर्भिनव वाग्विलासिनी। जे
चातुर्यार्थकलाकामिनी। ते शारदा विश्वमोहिनी। नमस्कारिली मियां ॥२१॥ मज हृदयीं सद्गुरु। जेणें
तारिलों हा संसारपूरु। म्हणऊनि विशेषें अत्यादरु। विवेकावरी ॥२२॥ जैसें डोळ्यां अंजन भेटे। ते
वेळीं दृष्टीसी फांटा फुटे। मग वास पाहिजे तेथ प्रगटे। महानिधी ॥२३॥ कां चिंतामणि जालया

* हातीं। सदा विजयवृत्ति मनोरथीं। तैसा मी पूर्णकाम निवृत्ती। ज्ञानदेवो म्हणे ॥२४॥ म्हणोनि जाणतेनो *
 * गुरु भजिजे। तेणें कृतकार्या होईजे। जैसें मूळसिंचनें सहजे। शाखापल्लव संतोषती ॥२५॥ कां तीर्थे *
 * जियें त्रिभुवनीं। तियें घडती समुद्रावगाहनीं। ना तरी अमृतरसास्वादनीं। रस सकळ ॥२६॥ तैसा *
 * पुढतपुढती तोचि। मियां आर्भिवंदिला श्रीगुरुचि। जो आर्भिलषित मनोरुचि। पुरविता तो ॥२७॥ *
 * आतां अवधारा कथा गहन। जे सकळां कौतुकां जन्मस्थान। कीं आर्भिनव उद्यान। विवेकतरुचें *
 * ॥२८॥ ना तरी सर्व सुखांची आदि। जे प्रमेयमहानिधि। नाना नवरससुधाब्धि। परिपूर्ण हे ॥२९॥ कीं *
 * परमधाम प्रकट। सर्व विद्यांचें मूळपीठ। शास्त्रजातां वसिष्ठा अशेषांचे ॥३०॥ ना तरी सकळ धर्मांचें *
 * माहेर। सज्जनांचें जिह्वार। लावण्यरत्नभांडार। शारदेचें ॥३१॥ नाना कथारूपें भारती। प्रकटली *
 * असे त्रिजगतीं। आविष्कारोनी महामती। व्यासाचिये ॥३२॥ म्हणोनि हा काव्यां रावो। ग्रंथ गुरुवतीचा *
 * ठावो। एथूनि रसां झाला आवो। रसाळपणाचा ॥३३॥ तेवींचि आईका आणीक एका एथूनि शब्दश्री *
 * सच्छास्त्रिका। आणि महाबोधीं कोंवळीका। दुणावली ॥३४॥ एथ चातुर्य शहाणें झालें। प्रमेय रुचीस *
 * आलें। आणि सौभाग्य पोखलें। सुखाचें एथ ॥३५॥ माधुर्यीं मधुरता। शृंगारीं सुरेखता। रूढपण *
 * उचितां। दिसे भलें ॥३६॥ एथ कळाविदपण कळा। पुण्यासि प्रतापु आगळा। म्हणऊनि जन्मेजयाचे *
 * अवलीळा। दोष हरले ॥३७॥ आणि पाहतां नावेका। रंगीं सुरंगतेची आगळीका। गुणां सगुणपणाचें *

* बिका। बहुवस एथ ॥३८॥ भानुचेनि तेजें धवळलें। जैसें त्रैलोक्य दिसे उजळलें। तैसें व्यासमती *
 * कवळलें। मिरवे विश्व ॥३९॥ कां सुक्षेत्रीं बीज घातलें। तें आपुलियापरी विस्तारलें। तैसें भारतीं *
 * सुरवाडलें। अर्थजात ॥४०॥ ना तरी नगरांतरीं वसिजे। तरी नागराचि होईजे। तैसें व्यासोक्तितेजें। *
 * धवळित सकळ ॥४१॥ कीं प्रथमवयसाकाळीं। लावण्याची नव्हाळी। प्रगटे जैसी आगळी। अंगनाअंगीं *
 * ॥४२॥ ना तरी उद्यानीं माधवी घडे। तेथ वनशोभेची खाणी उघडे। आदिलापासोनि अपाडें। *
 * जियापरी ॥४३॥ नाना घनीभूत सुवर्ण। जैसें न्याहाळितां साधारण। मग अळंकारीं बरवेपण। निवाडु *
 * दावी ॥४४॥ तैसें व्यासोक्ती अळंकारिलें। आवडे तें बरवेपण पातलें। तें जाणोनि काय आश्रयिलें। *
 * इतिहासीं ॥४५॥ नाना पुरतिये प्रतिष्ठेलागीं। सानीव धरुनि आंगीं। पुराणें आख्यानरूपें जगीं। *
 * भारता आलीं ॥४६॥ म्हणऊनि महाभारतीं जें नाहीं। तें नोहेचि लोकीं तिहीं। येणें कारणें म्हणिपे *
 * पाहीं। व्यासोच्छिष्ट जगत्रय ॥४७॥ ऐसी सुरस जगीं कथा। जे जन्मभूमि परमार्था। मुनि सांगे *
 * नृपनाथा। जन्मेजया ॥४८॥ जें आर्द्धितीय उत्तम। पवित्रैक निरुपम। परम मंगलधाम। अवधारिजे *
 * ॥४९॥ आतां भारतीं कमळपरागु। गीताख्यु प्रसंगु। जो संवादला श्रीरंगु। अर्जुनेसी ॥५०॥ ना तरी *
 * शब्दब्रह्माब्धि। मथिलेया व्यासबुद्धि। निवडिलें निरवधि। नवनीत हें ॥५१॥ मग ज्ञानान्निसंपर्के। *
 * कडसिलें विवेकें। पद आलें परिपाकें। आमोदासी ॥५२॥ जें अपेक्षिजे विरक्तीं। सदा अनुभविजे *
 * संतीं। सोहंभावे पारंगतीं। रमिजे जेथ ॥५३॥ जें आकर्णिजे भक्तीं। जें आदिवंद्य त्रिजगतीं। ते *

* भीष्मपर्वी संगती। सांगिजैल ॥५४॥ जें भगवद्गीता म्हणिजे। जें ब्रह्मेशांनीं प्रशंसिजे। जें सनकादिकीं *
 * सेविजे। आदरेसीं ॥५५॥ जैसे शारदियेचे चंद्रकळे। मार्जीं अमृतकण कोंवळे। ते वेंचिती मनं मवाळें। *
 * चकोरतलगे ॥५६॥ तियापरी श्रोतां। अनुभवावी हे कथा। आर्ति हळुवारपण चित्ता। आणुनियां *
 * ॥५७॥ हे शब्देविण संवादिये। इंद्रियां नेणतां भोगिजे। बोलाआदि झोंबिजे। प्रमेयासी ॥५८॥ जैसें *
 * भ्रमर परागु नेती। परी कमळदळें नेणती। तैसी परी आहे सेविती। ग्रंथीं इये ॥५९॥ कां आपुला ठावो *
 * न सांडितां। आलिंगिजे चंद्र प्रगटतां। अनुरागु भोगितां। कुमुदिनी जाणे ॥६०॥ ऐसेनि गंभीरपणें। *
 * थिरावलेनि अंतःकरणें। आथिला तोचि जाणे। मानूं इये ॥६१॥ अहो अर्जुनाचिये पांती। परिसणया *
 * योग्य होती। तिहीं कृपा करुनि संतीं। अवधान द्यावें ॥६२॥ हें सलगी म्यां म्हणितलें। चरणां लागोनि *
 * विनविलें। प्रभू सखोल हृदय आपुलें। म्हणऊनिया ॥६३॥ जैसा स्वभावो मायबापांचा। अपत्य बोले *
 * जरी बोबडी वाचा। तरी आर्धिकचि तयाचा। संतोष आथी ॥६४॥ तैसा तुम्हीं मी अंगीकारिला। *
 * सज्जनीं आपुला म्हणितला। तरी उणें सहजें उपसाहला। प्रार्थू कायी ॥६५॥ परी अपराधु तो *
 * आणीक आहे। जें मी गीतार्थु कवळूं पाहें। तें अवधारा विनवूं लाहें। म्हणऊनियां ॥६६॥ हें अनावर *
 * न विचारितां। वायांचि धिंवसा उपनला चित्ता। येन्हवीं भानुतेजीं काय खद्योता। शोभा आथी ॥६७॥ *
 * कीं टिटिभू चांचुवरी। माप सूये सागरीं। मी नेणतु त्यापरी। प्रवर्ते येथ ॥६८॥ आयका आकाश *

* गिंवसावें। तरी आणीक त्याहूनि थोर होआवें। म्हणऊनि अपाडु हें आघवें। निर्धारितां ॥६९॥ या *
 * गीतार्थाची थोरी। स्वयें शंभू विवरी। जेथ भवानी प्रश्नु करी। चमत्कारोनी ॥७०॥ तेथ हरु म्हणे *
 * नेणिजे। देवी जैसें कां स्वरूप तुझें। तैसें हें नित्य नूतन देखिजे। गीतातत्त्व ॥७१॥ हा वेदार्थसागरु। *
 * जया निद्रिताचा घोरु। तो स्वयें सर्वेश्वरु। प्रत्यक्ष अनुवादला ॥७२॥ ऐसें जें अगाधा जेथ वेडावती *
 * वेद। तेथ अल्प मी मतिमंद। काय होय ॥७३॥ हें अपार कैसेनि कवळावें। महातेज कवणें धवळावें। *
 * गगन मुठीं सुवावें। मशकें केवीं ॥७४॥ परी एथ असे एकु आधारु। तेणेंचि बोलें मी सधरु। जे *
 * सानुकूळ श्रीगुरु। ज्ञानदेवो म्हणे ॥७५॥ येन्हवीं तरी मी मुखु। जरी जाहला आर्विवेकु। तरी *
 * संतकृपादीपकु। सोज्वळु असे ॥७६॥ लोहाचें कनक होये। हें सामर्थ्य परिसींच आहे। कीं मृतही *
 * जीवित लाहे। अमृतसिद्धि ॥७७॥ जरी प्रकटे सिद्धसरस्वती। तरी मुकया आथी भारती। एथ *
 * वस्तुसामर्थ्यशक्ती। नवल कायी ॥७८॥ जयातें कामधेनु माये। तयासी अप्राप्य कांहीं आहे। *
 * म्हणऊनि मी प्रवर्तो लाहें। ग्रंथीं इये ॥७९॥ तरी न्यून तें पुरतें। आर्धिक तें सरतें। करुनि घेयावें *
 * हें तुमतें। विनवितु असें ॥८०॥ आतां देइजो अवधाना। तुम्हीं बोलविल्या मी बोलेना। जैसें चेष्टें *
 * सूत्राधीना। दारुयंत्र ॥८१॥ तैसा मी अनुग्राहीतु। साधूंचा निरुपितु। ते आपुला अलंकारितु। भलतयापरी *
 * ॥८२॥ तंव श्रीगुरु म्हणती राहीं। हें तुज बोलावें नलगे ब्रांहीं। आतां ग्रंथा चित्त देई। झडकरी वेगा *
 * ॥८३॥ या बोला निवृत्तिदासु। पावूनि परम उल्हासु। म्हणे परियेसा मना अवकाशु। देऊनियां *

॥८४॥

धृतराष्ट्र उवाच : धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः। मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय ॥१॥

तरी पुत्रस्नेहे मोहितु। धृतराष्ट्र असे पुसतु। म्हणे संजया सांगें मातु। कुरुक्षेत्रींची ॥८५॥ जें धर्मालय म्हणिजे। तेथ पांडव आणि माझे। गेले असती व्याजें। जुंझाचेनि ॥८६॥ तरी तिहीं येतुलां अवसरीं। काय किजत असे येरयेरीं। तें झडकरी कथन करीं। मजप्रती ॥८७॥

संजय उवाच : दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा। आचार्यमुपसंगम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥२॥

तिये वेळीं तो संजय बोले। म्हणे पांडवसैन्य उचललें। जैसें महाप्रळयीं पसरलें। कृतांतमुख ॥८८॥ तैसें तें घनदाट। उठावलें एकवाट। जैसें उसळलें कालकूट। धरी कवण ॥८९॥ ना तरी वडवानलु सांदुकला। प्रलयवातें पोखला। सागर शोषूनि उधवला। अंबरासी ॥९०॥ तैसें दळ दुर्धरा। नानाव्यूहीं परिकरा। अवगमलें भयासुरा। तिये काळीं ॥९१॥ तें देखिलेयां दुर्योधनं। अव्हेरिलें कवणें मानें। जैसें न गणिजे पंचाननं। गजघटांतें ॥९२॥

पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महर्षिं चमूम्। व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥३॥

मग द्रोणापासीं आला। तयातें म्हणे हा देखिला। कैसा दळभारु उचलला। पांडवांचा ॥९३॥ गिरिदुर्ग जैसे चालतो। तैसें विविध व्यूह संभवतो। हे रचिले आथि बुद्धिमंतें। द्रुपदकुमरें ॥९४॥ जो का

तुम्हीं शिक्षापिला। विद्या देऊनि कुरुठा केला। तेणें हा सैन्यसिंहु पाखरिला। देखदेख ॥९५॥

अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि। युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥४॥

आणीकही असाधारण। जे शस्त्रास्त्रीं प्रवीण। जे क्षात्रधर्मी निपुण। वीर आहाती ॥९६॥ जे बळें प्रौढी पौरुषें। भीमार्जुनांसारिखे। ते सांगेन कौतुकें। प्रसंगेंचि ॥९७॥ एथ युयुधानु सुभटु। आला असे विराटु। महारथी श्रेष्ठ। द्रुपद वीरु ॥९८॥

धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान्। पुरुजित् कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुङ्गवः ॥५॥

चेकितान धृष्टकेतु। काशीश्वरु विक्रांतु। उत्तमौजा नृपनाथु। शैब्य देख ॥९९॥ हा कुन्तिभोजु पाहें। एथ युधामन्यु आला आहे। आणि पुरुजितादि राय हे। सकळ देखें ॥१००॥

युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान्। सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ॥६॥

हा सुभद्राहृदयनंदनु। जो अपरु नवा अर्जुनु। तो आर्भिमन्यु म्हणे दुर्योधनु। देखें द्रोणा ॥१०१॥ आणीकही द्रौपदीकुमरा। हे सकळही महारथी वीरा। मिती नेणिजे परी अपारा। मीनले असती ॥१०२॥

अस्माकं तु विशिष्टा ये तान् निबोध द्विजोत्तमा। नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान् ब्रवीमि ते ॥७॥

आतां आमुचां दळीं नायका। जे रुढ वीर सैनिका। ते प्रसंगें आइका। सांगिजती ॥३॥

भवान् भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिंजयः। अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिस्तथैव च ॥८॥

उद्देशें एक दोनी। जायिजती बोलोनी। तुम्ही आदिकरुनी। मुख्य जे जे ॥४॥ हा भीष्मु गंगानंदनु।

जो प्रतापतेजस्वी भानु। रिपुगजपंचाननु। कर्ण वीरु ॥५॥ या एकेकाचेनि मनोव्यापारें। हें विश्व होय
संहरे। हा कृपाचार्य न पुरे। एकलाचि ॥६॥ एथ विकर्ण वीरु आहे। हा अश्वत्थामा पैल पाहें। याचा
अडदरु सदा वाहे। कृतांतु मनीं ॥७॥ समितिंजयो सौमदत्ति। ऐसे आणीकही बहुत आहाती।
जयांचिया बळा मिती। धाताही नेणे ॥८॥

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः। नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः॥९॥

जे शस्त्रविद्यापारंगत। मंत्रावतार मूर्त। हो का जे अस्त्रजात। एथूनि रुढ ॥९॥ हे अप्रतिमल्ल
जगीं। पुरता प्रतापु अंगीं। परी सर्व प्राणें मजचिलागीं। आराइले असती ॥१०॥ पतिव्रतेचें हृदय
जैसें। पतीवांचूनि न स्पर्शें। मी सर्वस्व या तैसें। सुभटांसी ॥११॥ आमुचिया काजाचेनि पाडें। देखती
आपुलें जीवित थोकडें। ऐसे निरवधि चोखडे। स्वामिभक्त ॥१२॥ झुंजती कुळकणी जाणती। कळे
कीर्तीसी जिती। हें बहु असो क्षात्रनीती। एथोनियां ॥१३॥ ऐसे सर्वापरी पुरते। वीर दळीं आमुतें।
आतां काय गणूं यातें। अपार हे ॥१४॥

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम्। पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥१०॥

वरी क्षत्रियांमाजि श्रेष्ठ। जो जगजेठी जगीं सुभट। तया दळवैपणाचा पाटु। भीष्मासी पें ॥१५॥
आतां याचेनि बळें गवसलें। हें दुर्ग जैसें पन्नासिलें। येणें पाडें थेंकुलें। लोकत्रय ॥१६॥ आधींच समुद्र

पाहीं। तेथ दुवाडपण कवणा नाहीं। मग वडवानळु तैसेयाही। विरजा जैसा ॥१७॥ ना तरी प्रलयवन्हि
महावातु। या दोघां जैसा सांघातु। तैसा हा गंगासुतु। सेनापति ॥१८॥ आतां येणेंसि कवण भिडे।
हें पांडव सैन्य कीर थोडें। ओडचलेनि पाडें। दिसत असे ॥१९॥ वरी भीमसेन बेथु। तो जाहला असे
सेनानाथु। ऐसें बोलोनि हे मातु। सांडिली तेणें ॥२०॥

अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः। भीष्ममेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ॥११॥

मग पुनरपि काय बोले। सकळ सैनिकांतें म्हणितलें। आतां दळभार आपुलाले। सरसे करा
॥२१॥ जया जिया अक्षौहिणी। तेणें तिया आरणी। वरगण कवणकवणी। महारथिया ॥२२॥ तेणें
तिया आवरिजे। भीष्मातळीं राहिजे। द्रोणातें म्हणे पाहिजे। तुम्हीं सकळ ॥२३॥ हाचि एक रक्षावा।
मी तैसा हा देखावा। येणें दळभारु आघवा। साचु आमुचा ॥२४॥

तस्य संजनयन् हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः। सिंहनादं विनद्योच्चैः शङ्ख्यं दध्मौ प्रतापवान् ॥१२॥

या राजाचिया बोला। सेनापति संतोषला। मग तेणें केला। सिंहनादु ॥२५॥ तो गाजत असे
अद्भुत। दोन्ही सैन्यांआतु। प्रतिध्वनि न समातु। उपजत असे ॥२६॥ तयाचि तुलगासवें। वीरवृत्तीचेनि
थावें। दिव्य शंख भीष्मदेवें। आस्फुरिला ॥२७॥ ते दोन्ही नाद मिनले। तेथ त्रैलोक्य बधिरभूत
जाहलें। जैसें आकाश का पडिलें। तुटोनियां ॥२८॥ घडघडीत अंबरा। उचंबळत सागर। क्षोभलें
चराचरा कांपत असे ॥२९॥ तेणें महाघोषगजरें। दुमदुमिताती गिरिकंदरें। तंव दळामाजि रणतुरें।

आस्फारिलीं ॥१३०॥

ततः शङ्ख्याश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः। सहस्रैवाभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥१३॥

उदंड सेंघ वाजतें। भयानकें खाखातें। महाप्रळयो जेथें। धाकडांसी ॥३१॥ भेरी निशाण
मांदळा शंख काहळा भोंगळा आणि भयासुर रणकोल्हाळा सुभटांचे ॥३२॥ आवेशें भुजा त्राहाटिती।
विसणैले हांका देती। जेथ महामद भद्रजाती। आवरती ना ॥३३॥ तेथ भेडांची कवण मातु। कांचया
केर फिटतु। जेणें दचकला कृतांतु। आंग नेघे ॥३४॥ एकां उभयांचि प्राण गेले। चांगांचे दांत बैसले।
बिरुदांचे दादुले। हिंवताती ॥३५॥ ऐसा अद्भुत तूरबंबाळु। ऐकोनि ब्रह्मा व्याकुळु। देव म्हणती
प्रळयकाळु। वोढवला आजी ॥३६॥ ऐसी स्वर्गीं मातु। देखोनि तो आकांतु। तंव पांडवदळांआंतु।
वर्तलें कायी ॥३७॥ हो का निजसार विजयाचें। कीं तें भांडार महातेजाचें। जेथ गरुडाचिये जावळियेचो।
कांतले चान्ही ॥३८॥

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ। माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः ॥१४॥

की पाखांचा मेरु जैसा। रहंवरु मिरवतसे तैसा। तेजें कोंदाटलिया दिशा। जयाचेनि ॥३९॥
जेथ अश्ववाहकु आपणा। वैकुंठीचा राणा जाणा। तया रथाचे गुणा। काय वर्णू ॥१४०॥ ध्वजस्तंभावरी
वानरु। तो मूर्तिमंत शंकरु। सारथी शाड्गधरु। अर्जुनेसीं ॥४१॥ देखा नवल तया प्रभूचें। अद्भुत

प्रेम भक्तांचें। जें सारथ्य पार्थाचें। करितु असे ॥४२॥ पाइकु पाठीसीं घातला। आपण पुढां राहिला।
तेणें पांचजन्य आस्फुरिला। अवलीळाचि ॥४३॥

पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनंजयः। पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्ख्यं भीमकर्मा वृकोदरः ॥१५॥

परी तो महाघोषु थोरु। गाजत असे गंहिरु। जैसा उदैला लोपी दिनकरु। नक्षत्रांतें ॥४४॥ तैसे
तूरबंबाळु भंवते। कौरवदळीं गाजत होते। ते हारपोनि नेणों केउते। गेले तेथ ॥४५॥ तैसाचि देखें
येरें। निनादें आर्तिं गहिरें। देवदत्त धनुर्धरें। आस्फुरिला ॥४६॥ ते दोनी शब्द अचाट। मिनले एकवट।
तेथ ब्रह्मकटाह शतकूट। हों पाहत असे ॥४७॥ तंव भीमसेनु विसणैला। जैसा महाकाळु खवळला।
तेणें पौंड्र आस्फुरिला। महाशंखु ॥४८॥

अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः। नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥१६॥

तो महाप्रलयजलधरु। जैसा घडघडिला गंहिरु। तंव अनंतविजयो युधिष्ठिरु। आस्फुरित असे
॥४९॥ नकुळें सुघोषु। सहदेवें मणिपुष्पकु। जेणें नादें अंतकु। गजबजला ठाके ॥१५०॥

काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः। धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चापराजितः ॥१७॥

द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते। सौभद्रश्च महाबाहुः शङ्ख्यान् दध्मुः पृथक्पृथक् ॥१८॥

तेथ भूपती होते अनेका। द्रुपदद्रौपदेयादिका। हा काशीपति देखा। महाबाहू ॥१५१॥ तेथ अर्जुनाचा
सुतु। सात्यकि अपराजितु। धृष्टद्युम्नु नृपनाथु। शिखंडी हन ॥१५२॥ विराटादि नृपवरा। जे सैनिक

मुख्य वीर। तिहीं नाना शंख निरंतर। आस्फुरिले ॥५३॥ तेणें महाघोषनिघातें। शेषकूर्म अवचितें।
गजबजोनि भूभारातें। सांडूं पाहती ॥५४॥ तेथ तिन्हीं लोक डंडळिता। मेरु मांदार आंदोळिता।
समुद्रजळ उसळता। कैलासवेरी ॥५५॥

स घोषो धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत्। नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ॥१९॥

पृथ्वीतळ उलथों पहाता। आकाश असे आसुडता। तेथ सडा होता। नक्षत्रांचा ॥५६॥ सृष्टि गेली
रे गेली। देवां मोकळवादी जाहली। ऐशी एक टाळी पिटिली। सत्यलोकीं ॥५७॥ दिहाचि दिन
थोकला। जैसा प्रळयकाळ मांडला। तैसा हाहाकारु उठिला। तिन्हीं लोकीं ॥५८॥ तंव आदिपुरुष
विस्मितु। म्हणे झणें होय पां अंतु। मग लोपिला अद्भुत। संभ्रमु तो ॥५९॥ म्हणोनि विश्व सांवरलें।
एहवीं युगान्त होतें वोडवलें। जें महाशंख आस्फुरिले। कृष्णादिकीं ॥६०॥ तो घोष तरी उपसंहरला।
परी पडिसाद होता राहिला। तेणें दळभार विध्वंसिला। कौरवांचा ॥६१॥ जैसा गजघटाआंतु। सिंह
लीला विदारितु। तैसा हृदयातें भेदितु। कौरवांचिया ॥६२॥ तो गाजत जंव आइकती। तंव उभेचि
हियें घालिती। एकमेकांतें म्हणती। सावध रे सावध ॥६३॥ तेथ बळें प्रौढीपुरते। जे महारथी वीर
होते। तिहीं पुनरपि दळातें। आवरिलें ॥६४॥

अथ व्यवस्थितान् दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान् कपिध्वजः। प्रवृत्ते शस्त्रसंपाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः ॥२०॥

मग सरिसपणें उठावले। दुणवटोनि उचलले। तया दंडीं क्षोभलें। लोकत्रय ॥६५॥ तेथ बाणवरी
धनुर्धरा वर्षताती निरंतर। जैसे प्रळयांत जलधरा। आर्निवार कां ॥६६॥ तें देखलिया अर्जुनें। संतोष
घेऊनि मनें। मग संभ्रमें दिठी सेने। घालितसे ॥६७॥ तव संग्रामीं सज्ज जाहले। सकळ कौरव देखिले।
मग लीला धनुष्य उचलिलें। पंडुकुमरें ॥६८॥

हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते अर्जुन उवाच : सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥२१॥

ते वेळीं अर्जुन म्हणतसे देवा। आतां झडकरी रथु पेलावा। नेऊनि मध्ये घालावा। दोहीं दळां
॥६९॥

यावदेतान् निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान्। कैर्मयासह योद्धव्यमस्मिन् रणसमुद्यमे ॥२२॥

जंव मी नावेका हे सकळ वीर सैनिका। न्याहाळीन अशेखा। झुंजते जे ॥१७०॥

योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः। धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥२३॥

एथ आले असती आघवे। परी कवणेंसीं म्या झुंजावें। हें रणीं लागे पहावें। म्हणऊनियां ॥७१॥
बहुतकरुनि कौरवा हे आतुर दुःस्वभावा। वांढिवावीण हांवा। बांधिती झुंजीं ॥७२॥ झुंजाची आवडी
धरिती। परी संग्रामीं धीर नव्हती। हें सांगोनि रायाप्रती। काय संजयो म्हणे ॥७३॥

संजय उवाच : एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत। सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥२४॥

आइका अर्जुन इतुकें बोलिला। तंव कृष्णें रथु पेलिला। दोहीं सैन्यांमार्जीं केला। उभा तेणें

॥७४॥

भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम्। उवाच पार्थ पश्यैतान् समवेतान् कुरुनिति ॥२५॥

जेथ भीष्मद्रोणादिक। जवळिकेचि सन्मुखा पृथिवीपति आणिक। बहुत आहाति ॥७५॥

तत्रापश्यत् स्थितान् पार्थः पितृनथ पितामहान्।

आचार्यान् मातुलान् भ्रातृन् पुत्रान् पौत्रान् सखींस्तथा ॥२६॥

श्वशुरान् सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि।

तान् समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान् बन्धूनवस्थितान् ॥२७॥

तेथ स्थिर करुनि रथु। अर्जुन असे पाहातु। तो दळभार समस्तु। संभ्रमेंसीं ॥७६॥ मग देवा म्हणे देख देख। हे गोत्रगुरु अशेख। तंव कृष्णा मनीं नावेक। विस्मो जाहला ॥७७॥ तो आपणयां आपण म्हणे। एथ कायी कवण जाणे। हें मनीं धरिलें येणें। परि कांहीं आश्चर्य असे ॥७८॥ ऐसी पुढील से घेतु। तो सहजें जाणे हृदयस्थु। परी उगा असे निवांतु। तिये वेळीं ॥७९॥ तंव तेथ पार्थु सकळ। पितृपितामह केवळ। गुरुबंधुमातुळ। देखता जाहला ॥१८०॥ इष्टमित्र आपुले। कुमरजन देखिले। हे सकळ असती आले। तयांमार्जीं ॥८१॥ सुहृज्जन सासरे। आणीकही सखे सोडरे। कुमर पौत्र धनुर्धरें। देखिले तेथ ॥८२॥ जयां उपकार होते केले। कां आपदीं जे राखिले। हे असो वडीलधाकुले।

आदिकरुनि ॥८३॥ ऐसें गोत्रचि दोहीं दळीं। उदित जालें असे कळीं। हें अर्जुनें तिये वेळीं। अवलोकिलें

॥८४॥

कृपया परयाऽऽविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत्।

अर्जुन उवाच : दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ॥८८॥

तेथ मनीं गजबज जाहाली। आणि आपैसी कृपा आली। तेणें अपमानें निघाली। वीरवृत्ति ॥८५॥ जिया उत्तमे कुळींचिया होती। आणि गुणलावण्य आथी। तिया आणिकीतें न साहती। सुतेजपणें ॥८६॥ नविये आवडीचेनि भरें। कामुक निजवनिता विसरे। मग पाडेंवीण अनुसरे। भ्रमला जैसा ॥८७॥ कीं तपोबळें ऋद्धी। पातलिया भ्रंशे बुद्धी। मग तया विरक्ततासिद्धी। आठवेना ॥८८॥ तैसें अर्जुना तेथ जाहलें। असतें पुरुषत्व गेलें। जें अंतःकरण दिधलें। कारुण्यासी ॥८९॥ देखा मंत्रजु बरळु जाय। मग तेथ कां जैसा संचारु होय। तैसा तो धनुर्धर महामोहें। आकळिला ॥९०॥ म्हणऊनी असता धीरु गेला। हृदया द्रावो आला। जैसा चंद्रकळीं सिंपिला। सोमकांतु ॥९१॥ तयापरी पार्थु। आर्तिस्नेहें मोहितु। मग सखेद असे बोलतु। अच्युतेसीं ॥९२॥ तो म्हणे अवधारीं देवा। म्यां पाहिला हा मेळावा। तंव गोत्रवर्गु आघवा। देखिला एथ ॥९३॥ हे संग्रामीं आर्ति उद्यता जाहाले असती कीर समस्त। पण आपणपेयां उचिता केवी होय ॥९४॥

सीदन्ती मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति। वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥२९॥

येणें नावेंचि नेणों कायी। मज आपणपें सर्वथा नाहीं। मन बुद्धी ठायीं। स्थिर नोहे ॥९५॥ देखें
देह कांपता। तोंड असे कोरडें होता। विकळता उपजता। गात्रांसी ॥९६॥

गाण्डीवं संसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते। न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥३०॥

सर्वांगा कांटाळा आला। आर्ति संतापु उपनला। तेथ बेंबळ हातु गेला। गांडिवाचा ॥९७॥ तें न
धरतचि निष्टलें। परि नेणेंचि हातोनि पडिलें। ऐसें हृदय असे व्यापिलें। मोहें येणें ॥९८॥ जें वज्रापासोनि
कठिण। दुर्धर आर्तिदारुण। तयाहून असाधारण। हें स्नेह नवल ॥९९॥ जेणें संग्रामीं हरु जितिला।
निवातकवचांचा ठावो फेडिला। तो अर्जुन मोहें कवळिला। क्षणामार्जी ॥२००॥ जैसा भ्रमर भेदी
कोडें। भलतैसें काष्ठ कोरडें। परि कळिकेमार्जी सांपडे। कोंवळिये ॥१॥ तेथ उत्तीर्ण होईल प्राणें। परी
तें कमळदळ चिरुं नेणे। तैसें कठीण कोंवळेपणें। स्नेह देखा ॥२॥ हें आदिपुरुषाची माया। ब्रह्मोयाहि
नयेचि आया। म्हणऊनी भुलविला ऐकें राया। संजयो म्हणे ॥३॥ अवधारीं मग तो अर्जुनु। देखोनि
सकळ स्वजनु। विसरला आर्भिमानु। संग्रामींचा ॥४॥ कैसी नेणों सदयता। उपनली तेथें चित्ता। मग
म्हणे कृष्णा आतां। नसिजे एथ ॥५॥ माझें मन आर्तिशय व्याकुळा। होतसे वाचा बरळा। जें वधावें
हें सकळा। येणें नावें ॥६॥

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशवा। न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥३१॥

या कौरवां जरी वधावें। तरी युधिष्ठिरादिक कां न वधावें। हे येरयेर आघवे। गोत्रज आमुचे ॥७॥
म्हणोनि जळो हें झुंज। प्रत्यया नये मज। एणें काय काज। महापापें ॥८॥ देवा बहुतीं परीं पाहतां।
एथ वोखटें होईल झुंजतां। वर कांहीं चुकवितां। लाभु आथी ॥९॥

न काङ्क्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च। किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ॥३२॥

तया विजयवृत्ती कांहीं। मज सर्वथा काज नाहीं। एथ राज्य तरी कायी। हें पाहुनियां ॥२१०॥
या सकळांतें वधावें। मग जे भोग भोगावे। ते जळोत आघवे। पार्थु म्हणे ॥११॥

येषामर्थे काङ्क्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च। त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥३३॥

तेणें सुखेंविण होईल। तें भलतेही साहिजेला। वरी जीवितही वेंचिजेला। याचिलागीं ॥१२॥ परी
यांसी घातु कीजे। मग आपण राज्य भोगिजे। हें स्वप्नींही मन माझें। करुं न शके ॥१३॥ तरी आम्हीं
कां जन्मावें। कवणालागीं जियावें। जें वडिलां या चिंतावें। विरुद्ध मनें ॥१४॥ पुत्रातें इप्सी कुळा
तयाचें कायि हेंचि फळा। जे निर्दाळिजे केवळा। गोत्र आपुलें ॥१५॥ हें मनींचि केविं धरिजे। आपण
वज्राचेया बोलिजे। वरी घडे तरी कीजे। भलें एयां ॥१६॥ आम्हीं जें जें जोडावें। तें समस्तीं इहीं
भोगावें। हें जीवितही उपकारावें। कार्जी यांचां ॥१७॥ आम्ही दिगंतीचे भूपाळा। विभांडूनि सकळा
मग संतोषविजे कुळा। आपुलें जे ॥१८॥ तेचि हे समस्त। परी कैसें कर्म विपरीत। जे जाहले असती
उद्यता। झुंजावया ॥१९॥ अंतौरियां कुमरें। सांडोनियां भांडारें। शस्त्राणीं जिव्हारें। आरोपुनी ॥२०॥

ऐसियांतें कैसेनि मारूं। कवणावरी शस्त्र धरूं। निज हृदया करूं। घातु केवीं ॥२१॥

आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः। मातुलाः श्वशुराः पौत्राः श्यालाः संबन्धिनस्तथा ॥३४॥

हे नेणसी तूं कवण। परी पैल भीष्म द्रोण। जयांचे उपकार असाधारण। आम्हां बहुत ॥२२॥ एथ शालक सासरे मातुळ। आणि बंधु कीं हे सकळ। पुत्र नातू केवळ। इष्टही असती ॥२३॥ अवधारीं आर्ति जवळिकेचे। हे सकळही सोयरे आमुचे। म्हणोनि दोष आथि वाचे। बोलतांचि ॥२४॥

एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन। आर्षिं त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किं नु महीकृते ॥३५॥

हे वरी भलतें करितु। आतांचि एथें मारितु। परि आपण मनें घातु। न चिंतावा ॥२५॥ त्रैलोक्यांचें अनकळिता। जरी राज्य होईल एथ। तरी हें अनुचिता। नाचरें मी ॥२६॥ जरी आजि एथ ऐसें कीजे। तरी कवणाचां मनीं उरिजे। सांगें मुख केवीं पाहिजे। तुझें कृष्णा ॥२७॥

निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन। पापमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः ॥३६॥

जरी वधु करुनि गोत्रजांचा। तरी वसौटा होऊनि दोषांचा। मज जोडलासि तूं हातींचा। दूरी होसी ॥२८॥ कुळहरणीं पातकें। तियें आंगीं जडती अशेखें। तये वेळीं तूं कवणें कें। देखावासी ॥२९॥ जैसा उद्यानामार्जीं अनळु। संचरला देखोनि प्रबळु। मग क्षणभरी कोकिलु। स्थिर नोहे ॥३०॥ सकर्दम सरोवरु। अवलोकूनि चकोरु। न सेवितु अव्हेरु। करुनि निघे ॥३१॥ तयापरी तूं

देवा। मज झकों न येसी मावा। जरी पुण्याचा वोलावा। नाशिल्ले ॥३२॥

तस्मान्नार्हा वयं हन्तुं धार्तराष्ट्रान्स्वबान्धवान्। स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ॥३७॥

म्हणोनि मी हें न करीं। इये संग्रामीं शस्त्र न धरीं। हें किडाळ बहुतीं परीं। दिसतसे ॥३३॥ तुजसीं अंतराय होइल। मग सांगें आमचें काय उरेल। तेणें दुःखें हियें फुटेल। तुजवीण कृष्णा ॥३४॥ म्हणवूनि कौरव हे वधिजती। मग आम्हीं भोग भोगिजती। हे असो मात अघडती। अर्जुन म्हणे ॥३५॥

यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः। कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥३८॥

हे आर्भिमानमदें भुलले। जरी पां संग्रामा आले। तन्ही आम्हीं हित आपुलें। जाणावें लागे ॥३६॥ हें ऐसें कैसें करावें। जे आपुले आपण मारावें। जाणत जाणतांचि सेवावें। काळकूट ॥३७॥ हां जी मार्गी चालतां। पुढां सिंह जाहला अवचितां। तो तंव चुकवितां। लाभु आथी ॥३८॥ असता प्रकाशु सांडावा। मग अंधकूप आश्रावा। तरी तेथ कवणु देवा। लाभु सांगें ॥३९॥ का समोर आग्नि देखोनी। जरी न वचिजे वोसंडोनी। तरी क्षणा एका कवळूनि। जाळूं सके ॥४०॥

कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुम्। कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥३९॥

तैसे दोष हे मूर्त। अंगीं वाजों असती पहात। हें जाणतांही केवीं एथ। प्रवर्तावें ॥४१॥ ऐसें पार्थ तिये अवसरीं। म्हणे देवा अवधारीं। या कल्मषाची थोरी। सांगेन तुज ॥४२॥

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः। धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥४०॥

जैसें काष्ठें काष्ठ मथिजे। तेथ वन्हि एक उपजे। तेणें काष्ठजात जाळिजे। प्रज्वळलेनि ॥४३॥
तैसा गोत्रींची परस्परें। जरी वधु घडे मत्सरें। तरी तेणें महादोषें घोरें। कुळचि नाशे ॥४४॥ म्हणवूनि
येणें पापें। वंशजधर्मु लोपे। मग अधर्मुचि आरोपे। कुळामार्जी ॥४५॥

अधर्माभिभवात् कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः। स्त्रीषु दुष्टासु वाष्प्येय जायते वर्णसंकरः ॥४६॥

एथ सारासार विचारावें। कवणें काय आचारावें। आणि विधिनिषेध आघवे। पारुषती ॥४६॥
असता दीपु दवडिजे। मग अंधकारीं राहाटिजे। तरी उजूचि का आडळिजे। जयापरी ॥४७॥ तैसा
कुळीं कुळक्षयो होय। तये वेळीं तो आद्य धर्म जाय। मग आन काहीं आहे। पापावांचुनी ॥४८॥ जें
यमनियम ठाकती। तेथ इंद्रियें सैरा विचरती। म्हणवूनि व्यभिचार घडती। कुळस्त्रियांसी ॥४९॥
उत्तम अधर्मीं संचरती। ऐसे वर्णावर्ण मिसळती। तेथ समूळ उपडती। जातिधर्म ॥२५०॥ जैसी
चोहटाचिये बळी। पाविजे सैरा काउळीं। तैसीं महापापें कुळीं। प्रवेशती ॥५१॥

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च। पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥४२॥

मग कुळा तया अशेखा। आणि कुळघातकां। येरयेरां नरका। जाणें आथी ॥५२॥ देखें वंशवृद्धि
समस्त। यापरी होय पतिता। मग वोवांडिती स्वर्गस्था। पूर्वपुरुष ॥५३॥ जेथ नित्यादि क्रिया ठाके।

आणि नैमित्तिक कर्म पारुखे। तेथ कवणा तिळोदकें। कवण अर्पी ॥५४॥ तरी पितर काय करिती।
कैसेनि स्वर्गीं वसती। म्हणोनि तेही येती। कुळापासीं ॥५५॥ जैसा नखाग्रीं व्याळु लागे। तो शिखांत
व्यापी वेगें। तेवीं आब्रह्म कुळ आधवे। आप्लविजे ॥५६॥

दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसंकरकारकैः। उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥४३॥

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दना। नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥४४॥

देवा अवधारीं आणीक एका। एथ घडे महापातका। जे संगदोषें हा लौकिका भ्रंशु पावे ॥५७॥
जैसा घरीं आपुला। वानिवसें वन्ही लागला। तो आणिकांहीं प्रज्वळिला। जाळूनि घाली ॥५८॥
तैसिया तया कुळसंगती। जे जे लोक वर्तती। तेही बाधु पावती। निमित्तें येणें ॥५९॥ तैसें नाना दोषें
सकळ। अर्जुन म्हणे तें कुळ। मग महाघोर केवळ। निरय भोगी ॥२६०॥ पडिलिया तिये ठायीं। मग
कल्पांतींही उगंडु नाहीं। येसणें पतन कुळक्षयीं। अर्जुन म्हणे ॥६१॥

अहो बत महत् पापं कर्तुं व्यवसिता वयम्। यद् राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः ॥४५॥

देवा हें विविध कानीं ऐकिजे। परी अझुनिवरी त्रासु नुपजे। हृदय वज्राचें हें काय कीजे। अवधारीं
पां ॥६२॥ अपेक्षिजे राज्यसुखा। जयालागीं तें तंव क्षणिका। ऐसें जाणतांही दोखा। अव्हेरुं ना ॥६३॥
जे हे वडिल सकळ आपुले। वधावया दिठी सूदले। सांग पां काय थेकुलें। घडलें आम्हां ॥६४॥

यदि मामप्रतिकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः। धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन् मे क्षेमतरं भवेत् ॥४६॥

आतां यावरी जें जियावें। तयापासूनि हें बरवें। जे शस्त्रें सांडूनि साहावे। बाण यांचे ॥६५॥
तयावरी होय जितुकें। तें मरणही वरी निकें। परी येणें कल्मषें। चाड नाही ॥६६॥ ऐसें देखून सकळा
अर्जुनें आपुलें कुळा। मग म्हणे राज्य तें केवळा। निरयभोगु ॥६७॥ ऐसें तिये अवसरीं। अर्जुन बोलिला
समरीं। संजयो म्हणे अवधारीं। धृतराष्ट्रातें ॥६८॥

संजय उवाच : एवमुक्त्वार्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत्। विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ॥४७॥

मग अत्यंत उद्वेगला। न धरत गहिंवरु आला। तेथ उडी घातली खालां। रथौनियां ॥६९॥ जैसा
राजकुमरु पदच्युतु। सर्वथा होय उपहतु। कां रवि राहुग्रस्तु। प्रभाहीनु ॥२७०॥ नातरी महासिद्धिसंभ्रमें।
जितला तापसु भ्रमें। मग आकळूनि कामें। दीनु कीजे ॥७१॥ तैसा तो धनुर्धरु। अत्यंत दुःखें जर्जरु।
दिसे जेथ रहंवरु। त्यजिला तेणें ॥७२॥ मग धनुष्यबाण सांडिले। न धरत अश्रुपात आले। ऐसें ऐकें
राया तेथें वर्तलें। संजयो म्हणे ॥७३॥ आतां यावरी तो वैकुंठनाथु। देखोनि सखेद पार्थु। कवणेपरी
परमार्थु। निरुपील ॥७४॥ ते सविस्तर पुढारी कथा। आर्ति सकौतुक ऐकतां। ज्ञानदेव म्हणे आतां।
निवृत्तिदासु ॥२७५॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अर्जुनविषादयोगो नाम प्रथमोऽध्यायः

॥१॥ (श्लोक ४७; ओव्या २७५)

श्रीसच्चिदानन्दार्पणमस्तु॥

॥श्री॥

॥ज्ञानेश्वरी॥

अध्याय दुसरा

संजय उवाच : तं तथा कृपयाविष्टमश्रूपूर्णाकुलेक्षणम्। विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥१॥

मग संजयो म्हणे रायाते। आइके तो पार्थु तेथें। शोकाकुल रुदनाते। करितसे ॥१॥ तें कुळ देखोनि समस्ता। स्नेह उपनलें अद्भुत। तेणें द्रवलें असे चित्त। कवणेपरी ॥२॥ जैसें लवण जळें झळंबलें। ना तरी अभ्र वातें हाले। तैसें सधीर परी विरमलें। हृदय तयाचें ॥३॥ म्हणोनि कृपा आकळिला। दिसतसे आर्ति कोमाइला। जैसा कर्दमीं रुपला। राजहंस ॥४॥ तयापरी तो पांडुकुमरा। महामोहें आर्ति जर्जरु। देखौनी श्रीशाङ्गधरु। काय बोले ॥५॥

श्रीभगवानुवाच : कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्। अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥२॥

म्हणे अर्जुना आदि पाहीं। हें उचित काय इये ठायीं। तूं कवण हें कायी। करीत आहासी ॥६॥ तुज सांगें काय जाहलें। कवण उणें आलें। करितां काय ठेलें। खेदु कायिसा ॥७॥ तूं अनुचिता चित्त

नेदिसी। धीरु कंहींच न संडिसी। तुझेनि नामें अपयशीं। दिशा लंघिजे ॥८॥ तूं शूरवृत्तीचा ठावो! क्षत्रियांमार्जीं रावो। तुझिया लाटेपणाचा आवो। तिहीं लोकीं ॥९॥ तुवां संग्रामीं हरु जितिला। निवातकवचांचा ठावो फेडिला। पवाडा तुवां केला। गंधर्वासी ॥१०॥ हें पाहतां तुझेनि पाडें। दिसे त्रैलोक्यही थोकडें। ऐसें पौरुष चोखडें। पार्था तुझे ॥११॥ तो तूं कीं आजि एथें। सांडूनिया वीरवृत्तीतें। अधोमुख रुदनातें। करितु आहासी ॥१२॥ विचारीं तूं अर्जुनु। कीं कारुण्यें कीजसी दीनु। सांग पां अंधकारें भानु। ग्रासिला आथी ॥१३॥ ना तरी पवनु मेघासी बिहे। कीं अमृतासी मरण आहे। पाहें पां इंधनचि गिळोनि जाये। पावकातें ॥१४॥ कीं लवणेंचि जळ विरे। संसर्गें काळकूट मरे। सांग महाफणी ददुरें। गिळिजे कायी ॥१५॥ सिंहासी झोंबे कोल्हा। ऐसा अपाडु आथि कां जाहला। परी तो त्वां साच केला। आजि एथ ॥१६॥ म्हणोनि अझुनी अर्जुना। झणें चित्त देसी या हीना। वेगीं धीर करुनियां मना। सावधान होई ॥१७॥ सांडीं हें मूर्खपण। उठीं घे धनुष्यबाण। संग्रामीं हें कवण। कारुण्य तुझे ॥१८॥ हां गा तूं जाणता। तरी न विचारिसी कां आतां। सांगें झुंजावेळें सदयता। उचित कायी ॥१९॥ हे असतिये कीर्तीसी नाशु। आणि पारत्रिकासि अपभ्रंशु। म्हणे जगन्निवासु। अर्जुनातें ॥२०॥

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत् त्वय्युपपद्यते। क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप ॥३॥

म्हणोनि शोक न करीं। तूं पुरता धीरु धरीं। हे शोच्यता अव्हेरीं। पंडुकुमरा ॥२१॥ तुज नव्हे

हैं उचित। येणें नासेल जोडलें बहुत। तूं अझुनिवरी हित। विचारिं पां ॥२२॥ येणें संग्रामाचेनि
 अवसरें। एथ कृपाळुपण नुपकरे। आतांचि हे काय सोयरे। जाहले तुज ॥२३॥ तूं आधींचि काय
 नेणसी। कीं हे गोत्र नोळखसी। वायांचि काय करिसी। आर्तिशो आतां ॥२४॥ आजिचें हें झुंज। काय
 जन्मा नवल तुज। हें परस्परें तुम्हां व्याज। सदाचि आथी ॥२५॥ तरी आतां काय जाहलें। कायि
 स्नेह उपनलें। हें नेणिजे परि कुडें केलें। अर्जुना तुवां ॥२६॥ मोह धरिलिया ऐसें होईल। जे असती
 प्रतिष्ठा जाईल। आणि परलोकही अंतरेल। ऐहिकेंसी ॥२७॥ हृदयाचें ढिलेपण। एथ निकयासि नव्हे
 कारण। हें संग्रामीं पतन जाण। क्षत्रियांसीं ॥२८॥ ऐसेनि तो कृपावंतु। नानापरी असे शिकवतु। हें
 एकोनि पंडुसुतु। काय बोले ॥२९॥

अर्जुन उवाच : कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन। इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥४॥

देवा हें येतुलेवरी। बोलावें नलगे अवधारीं। आधीं तूंचि चितीं विचारीं। संग्रामु हा ॥३०॥ हें झुंज
 नव्हे प्रमादु। एथ प्रवर्तलिया दिसतसे बाधु। हा उघडा लिंगभेदु। वोढवला आम्हां ॥३१॥ देखें
 मातापितरें आर्चिजती। सर्वस्वें तोष पावविजती। तियें पाठीं केवीं वधिजती। आपुलां हातीं ॥३२॥
 देवा संतवृंद नमस्कारिजे। कां घडे तरी पूजिजे। हें वांचूनि केवीं निंदिजे। स्वयें वाचा ॥३३॥ तैसें
 गोत्रगुरु आमुचे। हे पूजनीय आम्हां नियमाचे। मज बहुत भीष्मद्रोणांचें। वर्ततसे ॥३४॥ जयांलागीं

मनें विरु। आम्हीं स्वप्नींही न शकों धरूं। तयां प्रत्यक्ष केवीं करूं। घातु देवा ॥३५॥ वर जळो हें
 जियालें। एथ आघवेयांसि हेंचि काय जाहलें। जे यांच्या वधीं अभ्यासिलें। मिरविजे आम्हीं ॥३६॥
 मी पार्थु द्रोणाचा केला। येणें धनुर्वेदु मज दिधला। तेणें उपकारें काय आभारैला। वधीं तयातें ॥३७॥
 जेथींचिया कृपा लाभिजे वरु। तेथेंचि मनें व्यभिचारु। तरी काय मी भस्मासुरु। अर्जुन म्हणे ॥३८॥
 देवा समुद्र गंभीर आइकिजे। वर तोहि आहाच देखिजे। परी क्षोभु मनीं नेणिजे। द्रोणाचिये ॥३९॥
 हें अपार जें गगना। वर तयाही होईल माना। परि अगाध भलें गहना। हृदय याचें ॥४०॥ वरी अमृतही
 विटे। कीं काळवशें वज्र फुटे। परि मनोधर्मु न लोटे। विकरविला हा ॥४१॥ स्नेहालागीं माये। म्हणिजे
 तें कीरु होये। पण कृपा ते मूर्त आहे। द्रोणीं इये ॥४२॥ हा कारुण्याची आदि। सकळ गुणांचा निधि।
 विद्यासिंधु निरवधि। अर्जुन म्हणे ॥४३॥ हा येणें मानें महंतु। वरी आम्हांलागीं कृपावंतु। आतां सांग
 पां येथ घातु। चिंतूं येईल ॥४४॥

गुरुनहत्वा हि महानुभावान्श्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।

हत्वाऽर्थकामांस्तु गुरुनिहैव भुञ्जीय भोगान्रुधिरप्रदिग्धान् ॥५॥

ऐसे हे रणीं वधावे। मग आपण राज्यसुख भोगावें। तें मना नये आघवें। जीवितेंसीं ॥४५॥ हें येणें
 मानें दुर्भरा। जे याहीहुनि भोग सधरा। ते असतु येथवरा। भिक्षा मागतां भली ॥४६॥ ना तरी देशत्यागें
 जाइजे। का गिरिकंदर सेविजे। परी शस्त्र आतां न धरिजे। इयांवरी ॥४७॥ देवा नवनिशतीं शरीं।

वावरोनी यांचां जिव्हारीं। भोग गिंवसावे रुधिरीं। बुडाले जे ॥४८॥ ते काढूनि काय कीजती। लिप्त
केवीं सेविजती। मज नये हे उपपत्ति। याचिलागीं ॥४९॥

न चैतद् विद्मः कतरन् नो गरीयो यद् वा जयेम यदि वा नो जयेयुः।

यानेव हत्वा न जिजीविषामस्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्तराष्ट्राः ॥६॥

ऐसें अर्जुन तिये अवसरीं। म्हणे श्रीकृष्णा अवधारीं। परि तें मना नयेचि मुरारी। आइकोनियां
॥५०॥ हें जाणोनि पार्थु बिहाला। मग पुनरपि बोलों लागला। म्हणे देवो कां चित्त या बोला। देतीचिना
॥५१॥ येन्हवीं माझ्या चित्तीं जें होतें। तें मी विचारुनि बोलिलों एथें। परी निकें काय यापरौतें। तें
तुम्ही जाणा ॥५२॥ पै विरु जयांसी ऐकिजे। आणि या बोलींचि प्राणु सांडिजे। ते एथ संग्रामव्याजें।
उभे आहाती ॥५३॥ आतां ऐसेयांतें वधावें। कीं अव्हेरुनिया निघावें। या दोहोंमार्जी काड करावें। तें
नेणों आम्ही ॥५४॥

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः॥

यत् श्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥७॥

आम्हां काय उचित। तें पाहतां न स्फुरे येथ। जे मोहें येणें चित्त। व्याकुळ माझें ॥५५॥
तिमिरावरुद्ध जैसें। दृष्टीचें तेज भ्रंशे। मग पांसींच असतां न दिसे। वस्तुजात ॥५६॥ देवा मज तैसें

जाहलें। जें मन हें भ्रांतीं ग्रासिलें। आतां काय हित आपुलें। तेंही नेणें ॥५७॥ तरी श्रीकृष्णा तुवां
जाणावें। निकें तें आम्हां सांगावें। जे सखा सर्वस्व आघवें। आम्हांसि तूं ॥५८॥ तूं गुरु बंधु पिता।
तूं आमची इष्ट देवता। तूंचि सदा रक्षिता। आपदीं आमुतें ॥५९॥ जैसा शिष्यांतें गुरु। सर्वथा नेणे
अव्हेरु। कीं सरितांतें सागरु। त्यजी केवीं ॥६०॥ नातरी अपत्यातें माये। सांडूनि जरी जाये। तरी
तें कैसेंनि जिये। ऐकें कृष्णा ॥६१॥ तैसा सर्वापरी आम्हांसि। देवा तूंचि एक आहासि। आणि बोलिलें
जरी न मानिसी। मागील माझें ॥६२॥

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद् यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम्।

अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम् ॥८॥

तरी उचित काय आम्हां। जें व्यभिचरेना धर्मा। तें झडकरी पुरुषोत्तमा। सांगें आतां ॥६३॥ हें
सकळ कुळ देखोनि। जो शोकु उपजलासे मनीं। तो तुझिया वाक्यावांचुनि। न जाय आणिकें ॥६४॥
एथ पृथ्वीतळ आपु होईल। हें महेंद्रपदही पाविजेला। परि मोह हा न फिटेल। मानसींचा ॥६५॥ जैसीं
बीजें सर्वथा आहाळलीं। तीं सुक्षेत्रीं जन्ही पेरिलीं। तरी न विरुढतीं सिंचलीं। आवडे तैसीं ॥६६॥
ना तरी आयुष्य पुरलें आहे। तरी औषधें कांहीं नोहे। एथ एकचि उपेगा जाये। परमामृत ॥६७॥ तैसे
राज्यभोगसमृद्धि। उज्जीवन नोहे जीवबुद्धि। एथ जिव्हाळा कृपानिधि। कारुण्य तुझें ॥६८॥ ऐसें
अर्जुन तेथ बोलिला। जंव क्षण एक भ्रांती सांडिला। मग पुनरपि व्यापिला। उर्मी तेणें ॥६९॥ किं मज

* पाहतां उमी नोहे। हें अनारिसें गमत आहे। तो ग्रासिला महामोहें। काळसर्पें ॥७०॥ सर्वर्म हृदयकल्हारीं।
 * तेथ कारुण्यवेळेचां भरीं। लागला म्हणोनि लहरी। भांजेचि ना ॥७१॥ हें जाणोनि ऐसी प्रौढी। जो
 * दृष्टिसर्वें विष फेडी। तो धावया श्रीहरी गारुडी। पातला कीं ॥७२॥ तैसिया पंडुकुमरा व्याकुळा।
 * मिरवतसे श्रीकृष्ण जवळा। तो कृपावशें अवलीळा। रक्षील आतां ॥७३॥ म्हणोनि तो पार्थु।
 * मोहफणिग्रास्तु। म्यां म्हणितला हा हेतु। जाणोनियां ॥७४॥ मग देखा तेथ फाल्गुनु। घेतला असे
 * भ्रांती कवळूनु। जैसा घनपडळीं भानु। आच्छादिजे ॥७५॥ तयापरी तो धनुर्धरु। जाहलासे दुःखें
 * जर्जरु। जैसा ग्रीष्मकाळीं गिरिवरु। वणवला कां ॥७६॥ म्हणोनि सहजें सुनीळु। कृपामृतें सजळु। तो
 * वोळलासे श्रीगोपाळु। महामेघु ॥७७॥ तेथ सुदर्शनाची द्युति। तेचि विद्युल्लता झळकती। गंभीर
 * वाचा ते आयती। गर्जनेची ॥७८॥ आतां तो उदार कैसा वर्षेल। तेणें अर्जुनाचळु निवेल। मग नवी
 * विरुढी फुटेल। उन्मेषाची ॥७९॥ ते कथा आइका। मनाचिया आराणुका। ज्ञानदेवो म्हणे देखा।
 * निवृत्तिदासु ॥८०॥

* संजय उवाच : एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परंतप। न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह॥ ९॥

* ऐसें संजयो सांगतु। म्हणे राया तो पार्थु। पुनरपि शोकाकुलितु। काय बोले ॥८१॥ आइकें
 * सखेदु बोले श्रीकृष्णातें। आतां नाळवावें तुम्हीं मातें। मी सर्वथा न झुजें येथें। भरंवसेनि ॥८२॥ ऐसें

* येकि हेळां बोलिला। मग मौन करुनि ठेला। तेथ श्रीकृष्णा विस्मो पातला। देखोनि तयातें ॥८३॥

* तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारता। सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः ॥९०॥

* मग आपुलां चित्तीं म्हणे। एथ हें कायी आदरिलें येणें। अर्जुन सर्वथा कांहीं नेणे। काय कीजे
 * ॥८४॥ हा उमजे आतां कवणेपरी। कैसेनि धीरु स्वीकारी। जैसा ग्रहातें पंचाक्षरी। अनुमानी कां
 * ॥८५॥ ना तरी असाध्य देखोनि व्याधी। अमृतासम दिव्य औषधी। वैद्य सूची निरवधि। निदानींची
 * ॥८६॥ तैसे विवरतु असे श्रीअनंतु। तया दोहीं सैन्याआंतु। जयापरी पार्थु। भ्रांति सांडी ॥८७॥ तें
 * कारण मनीं धरिलें। मग सरोष बोलों आदरिलें। जैसे मातेच्या कोपीं थोकलें। स्नेह आथी ॥८८॥ कीं
 * औषधाचिया कडुवटपर्णीं। जैसी अमृताची पुरवणी। ते आहाच न दिसे परी गुणीं। प्रकट होय ॥८९॥
 * तैसीं वरिवरि पाहतां उदासें। आंत तरी आर्तिसुरसें। तियें वाक्यें हृषीकेशें। बोलों आदरिलीं ॥९०॥

* श्रीभगवानुवाच : अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे। गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ॥९१॥

* मग अर्जुनातें म्हणितलें। आम्हीं आजि हें नवल देखिलें। जें तुवा येथ आदरिलें। माझारींची
 * ॥९१॥ तूं जाणता तरी म्हणविसी। परी नेणिवेतें न संडिसी। आणि शिकवूं म्हणों तरी बोलसी।
 * बहुसाल नीति ॥९२॥ जात्यंधा लागे पिसें। मग तें सैरा धावे जैसें। तुझें शहाणपण तैसें। दिसतसे
 * ॥९३॥ तूं आपणपें तरी नेणसी। परी या कौरवांतें शोचूं पहासी। हा बहु विस्मय आम्हांसीं। पुढतपुढती
 * ॥९४॥ तरी सांग पां मज अर्जुना। तुजपासूनि स्थिति या त्रिभुवना। हे अनादि विश्वरचना। तें लटकें

कायी ॥९५॥ एथ समर्थु एक आथी। तयापासूनि भूतें होती। तरी हें वांयाचि काय बोलती। जगामार्जी
 ॥९६॥ हो कां सांप्रत ऐसें जहालें। जे हे जन्ममृत्यु तुवां सृजिले। आणि नाशु पावे नाशिले। तुझेनि
 कायी ॥९७॥ तूं भ्रमलेपणें अहंकृती। यांसि घातु न धरिसी चितीं। तरी सांगें कायि हे होती। चिरंतन
 ॥९८॥ कीं तूं एक वधिता। आणि सकळ लोक हा मरता। ऐसी भ्रांति झणें चित्ता। येवों देसी ॥९९॥
 अनादिसिद्ध हें आघवें। होत जात स्वभावें। तरी तुवां का शोचावें। सांगें मज ॥१००॥ परी मूर्खपणें
 नेणसी। न चिंतावें तें चिंतिसी। आणि तूंचि नीति सांगसी। आम्हांप्रति ॥१॥ देखें विवेकी जे होती।
 ते दोहींतेंही न शोचती। जे होय जाय हे भ्रांती। म्हणऊनियां ॥२॥

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः। न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥१२॥

अर्जुना सांगेन आइका। एथ आम्ही तुम्ही देख। आणि हे भूपति अशेखा। आदिकरुनी ॥३॥
 नित्यता ऐसेचि असोनी। ना तरी निश्चित क्षया जाउनि। हे भ्रांति वेगळी करुनी। दोन्हीं नाहीं ॥४॥
 हें उपजे आणि नाशे। तें मायावशें दिसे। येन्हीं तत्त्वता वस्तु जे असे। ते आर्विनाशचि ॥५॥ जैसें
 पवनें तोय हालविलें। आणि तरंगाकार जाहलें। तरी कवण कें जन्मलें। म्हणों ये तेथ ॥६॥ तेंचि
 वायूचें स्फुरण ठेलें। आणि उदक सहज सपाटलें। तरी आतां काय निमालें। विचारिं पां ॥७॥

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा। तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥१३॥

आइकें शरीर तरी एका। परी वयसा भेद अनेका। हें प्रत्यक्षचि देख। प्रमाण तूं ॥८॥ एथ कौमारत्व
 दिसे। मग तारुण्यीं तें भ्रंशे। परी देहचि न नाशे। एकेकासवें ॥९॥ तैसीं चैतन्याच्या ठायीं। इयें
 शरीरांतरें होती जाती पाहीं। ऐसें जाणे तया नाहीं। व्यामोहदुःख ॥११०॥

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः। आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥१४॥

एथ नेणावया हेंचि कारण। जे इंद्रियांआधीनपण। तिहीं आकळिजे अंतःकरण। म्हणऊनि भ्रमे
 ॥११॥ इंद्रियें विषय सेविती। तेथ हर्ष शोक उपजती। ते अंतर आप्लविती। संगें येणें ॥१२॥ जयां
 विषयांच्या ठायीं। एकनिष्ठता कहीं नाहीं। तेथ दुःख आणि कांहीं। सुखहि दिसे ॥१३॥ देखें हे
 शब्दाची व्याप्ति। निंदा आणि स्तुति। तेथ द्वेषाद्वेष उपजती। श्रवणद्वारें ॥१४॥ मृदु आणि कठीण।
 हे स्पर्शाचे दोन्ही गुण। जे वपूचेनि संगें कारण। संतोषखेदां ॥१५॥ भ्यासुर आणि सुरेखा। हें रूपाचें
 स्वरूप देख। जें उपजवी सुखदुःखा। नेत्रद्वारें ॥१६॥ सुगंधु आणि दुर्गंधु। हा परिमळाचा भेदु। जो
 घ्राणसंगें विषादु-। तोषु देता ॥१७॥ तैसाचि द्विविध रसु। उपजवी प्रीतित्रासु। म्हणूनि हा अपभ्रंशु।
 विषयसंगु ॥१८॥ देखें इंद्रियांआधीन होईजे। तें शीतोष्णांतें पाविजे। आणि सुखदुःखीं आकळिजे।
 आपणपें ॥१९॥ या विषयांवांचूनि कांहीं। आणीक सर्वथा रम्य नाहीं। ऐसा स्वभावोचि पाहीं।
 इंद्रियांचा ॥१२०॥ हे विषय तरी कैसे। रोहिणीचें जळ जैसें। कां स्वप्नींचा आभासे। भद्रजाति
 ॥१२१॥ देखें आर्नित्य तियापरी। म्हणऊनि तूं अव्हेरीं। हा सर्वथा संगु न धरीं। धनुर्धरा ॥२२॥

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ। समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥१५॥

हे विषय जयातें नाकळिती। तया सुखदुःखें दोन्ही न पवती। आणि गर्भवासुसंगती। नाही तया ॥२३॥ तो नित्यरूपु पार्था। वोळखावा सर्वथा। जो या इंद्रियार्था नागवेचि ॥२४॥

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः। उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥१६॥

आतां अर्जुना आणिक कांहीं एका सांगेन मी आइका जें विचारें परलोका वोळखिती ॥२५॥ या उपाधिमाजीं गुप्त। चैतन्य असे सर्वगत। तें तत्त्वज्ञ संत। स्वीकारिती ॥२६॥ सलिलीं पय जैसें। एक होऊनि मीनलें असे। परी निवडूनि राजहंसें। वेगळे कीजे ॥२७॥ कीं आग्निमुखें किडाळा। तोडोनियां चोखाळा। निवडिती केवळा बुद्धिमंत ॥२८॥ ना तरी जाणिवेच्या आयणी। करितां दधिकडसणी। मग नवनीत निर्वाणीं। दिसे जैसें ॥२९॥ कीं भूस बीज एकवटा। उपणितां राहे घनवटा। तेथ उडे तें फलकटा। जाणों आलें ॥१३०॥ तैसें विचारितां निरसलें। तें प्रपंचु सहजें सांडवलें। मग तत्त्वता तत्त्व उरलें। ज्ञानियांसी ॥३१॥ म्हणोनि आर्नित्याचां ठायीं। तयां आस्तिक्यबुद्धि नाही। निष्कर्षु दोहीही। देखिला असे ॥३२॥

आर्विनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्। विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित् कर्तुमर्हति ॥१७॥

देखें सारासार विचारितां। भ्रांति ते पाहीं असारता। तरी सार तें स्वभावता। नित्य जाणें ॥३३॥

हा लोकत्रयाकारु। तो जयाचा विस्तारु। तेथ नाम वर्ण आकारु। चिन्ह नाही ॥३४॥ जो सर्वदा सर्वगतु। जन्मक्षयातीतु। तया केलियाहि घातु। कदाचि नोहे ॥३५॥

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः। अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद् युध्यस्व भारत ॥१८॥

आणि शरीरजात आघवें। हें नाशवंत स्वभावें। म्हणोनि तुवां झुजावें। पंडुकुमरा ॥३६॥

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्। उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥१९॥

तूं धरुनि देहाभिमानातें। दिठी सूनि या शरीरातें। मी मारिता हे मरते। म्हणत आहासी ॥३७॥ तरी अर्जुना तूं हें नेणसी। जरी तत्त्वता विचारिसी। तरी वधिता तूं नव्हेसी। हे वध्य नव्हती ॥३८॥

न जायते म्रियते वा कदाचिन् नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥२०॥

जैसें स्वप्नामाजिं देखिजे। तें स्वप्नींचि साच आपजे। मग चेऊनियां पाहिजे। तंव कांहीं नाही ॥३९॥ तैसी हे जाण माया। तूं भ्रमत आहासी वायां। शस्त्रें हाणितलिया छाया। जैसी आंगीं न रूपे ॥१४०॥ कां पूर्ण कुंभ उलंडला। तेथ बिंबाकारु दिसे भ्रंशला। परी भानु नाही नासला। तयासवें ॥४१॥ ना तरी मठीं आकाश जैसें। मठाकृती अवतरलें असे। तो भंगलिया आपैसें। स्वरूपचि ॥४२॥

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम्। कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम् ॥२१॥

तैसें शरीराचां लोपीं। सर्वथा नाशु नाहीं स्वरूपीं। म्हणऊनि तूं हे नारोपीं। भ्रांति बापा ॥४३॥

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥२२॥

जैसें जीर्ण वस्त्र सांडिजे। मग नूतन वेढिजे। तैसे देहांतरातें स्वीकारिजे। चैतन्यनाथें ॥४४॥

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः। न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥२३॥

हा अनादि नित्यसिद्धु। निरुपाधि विशुद्धु। म्हणऊनि शस्त्रादिकीं छेदु। न घडे यया ॥४५॥

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव चा नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥२४॥

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते। तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ॥२५॥

हा प्रळयोदकें नाप्लवे। आग्निदाहो न संभवे। एथ महाशेषु न प्रभवे। मारुताचा ॥४६॥ अर्जुना
हा नित्यु। अचळु हा शाश्वतु। सर्वत्र सदोदितु। परिपूर्णु हा ॥४७॥ हा तर्काचिये दिठी। गोचर नोहे
किरीटी। ध्यान याचिये भेटी। उत्कंठा वाहे ॥४८॥ हा सदा दुर्लभु मना। आपु नोहे साधना। निःसीमु
हा अर्जुना। पुरुषोत्तमु ॥४९॥ हा गुणत्रयरहितु। व्यक्तीसी अतीतु। अनादि आर्विकृतु। सर्वरूप
॥५०॥ अर्जुना ऐसा जाणावा। हा सकळात्मकु देखावा। मग सहजें शोकु आघवा। हरेल तुझा
॥५१॥

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम्। तथाऽपि त्वं महाबाहो नैवं शोचितुमर्हसि ॥२६॥

अथवा ऐसा नेणसी। तूं अंतवंतचि हें मानिशी। तन्ही शोचूं न पवसी। पंडुकुमरा ॥५२॥

जे आदि-स्थिति-अंतु। हा निरंतर असे नित्यु। जैसा प्रवाहो अनुस्यूतु। गंगाजळाचा ॥५३॥ तें
आदि नाहीं खंडलें। समुद्रीं तरी असे मिनलें। आणि जातचि मध्यें उरलें। दिसे जैसें ॥५४॥ इयें
तिन्ही तयापरी। सरसींच सदा अवधारीं। भूतांसि कवणीं अवसरीं। ठाकती ना ॥५५॥ म्हणोनि हें
आघवें। एथ तुज नलगे शोचावें। जे स्थितीची हे स्वभावें। अनादि ऐसी ॥५६॥

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च। तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥२७॥

ना तरी हें अर्जुना। नयेचि तुझिया मना। जे देखोनि लोकु अधीना। जन्मक्षया ॥५७॥ तरी येथ
कांहीं। तुज शोकासि कारण नाहीं। जे जन्ममृत्यु हे पाहीं। अपरिहर ॥५८॥ उपजे तें नाशे। नाशलें
पुनरपि दिसें। हें घटिकायंत्र तैसें। परिभ्रमे गा ॥५९॥ ना तरी उदोअस्तु आपैसे। अखंडित होत जात
जैसे। हें जन्ममरण तैसें। आर्निवार जर्गी ॥६०॥ महाप्रळयअवसरे। हें त्रैलोक्यही संहरे। म्हणोनि
हा न परिहरे। आदिअंतु ॥६१॥ तूं जरी हें ऐसें मानसी। तरी खेदु कां करिशी। काय जाणतचि
नेणसी। धनुर्धरा ॥६२॥ एथ आणीकही एक पार्था। तुज बहुतीं परी पाहतां। दुःख करावया सर्वथा।
विषो नाहीं ॥६३॥

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत। अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥२८॥

जें समस्तें इयें भूतें। जन्माआदि अमूर्ते। मग पातलीं व्यक्तीतें। जन्मलेया ॥६४॥ तियें क्षयासि जेथ जाती। तेथ निभ्रांत आनें नव्हती। देखें पूर्व स्थितीच येती। आपुलिये ॥६५॥ येर मध्यें जें प्रतिभासे। तें निद्रिता स्वप्न जैसें। तैसा आकारु हा मायावशें। सत्स्वरूपीं ॥६६॥ ना तरी पवनें स्पर्शिलें नीर। पढियासे तरंगाकार। का परापेक्षा अळंकार-। व्यक्ति कनकीं ॥६७॥ तैसें सकळ हें मूर्त। जाण पां मायाकारिता जैसें आकाशीं बिंबता। अभ्रपटळ ॥६८॥ तैसें आदीचि जें नाहीं। तयालागीं तूं रुदसि कायी। तूं अवीट तें पाहीं। चैतन्य एक ॥६९॥

आश्चर्यवत् पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद् वदति तथैव चान्यः ।

आश्चर्यवचि चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाऽप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥२९॥

जयाची आर्तीचि भोगिता। विषयीं त्यजिले संत। जयालागीं विरक्ता। वनवासिये ॥१७०॥ दिठी सूनि जयातें। ब्रह्मचर्यादि व्रतें। मुनीश्वर तपातें। आचरताती ॥७१॥ एक अंतरीं निश्चळा जें निहाळितां केवळा। विसरले सकळा। संसारजात ॥७२॥ एका गुणानुवादु करितां। उपरति होऊनि चित्ता। निरवधि तल्लीनता। निरंतर ॥७३॥ एक ऐकतांचि निवाले। ते देहभावीं सांडिले। एक अनुभवं पातले। तद्रूपता ॥७४॥ जैसें सरिताओघ समस्ता। समुद्रामाजिं मिळता। परी माघौते न समाता। परतले नाहीं ॥७५॥ तैसिया योगीश्वरांचिया मती। मिळणीसवें एकवटती। परी जे विचारुनि पुनरावृत्ति।

भजतीचिना ॥७६॥

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारता। तस्मात् सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ॥३०॥

जें सर्वत्र सर्वही देहीं। जया करितांही घातु नाहीं। तें विश्वात्मक तूं पाहीं। चैतन्य एक ॥७७॥ याचेनिचि स्वभावें। हें होत जात आघवें। तरी सांग काय शोचावें। एथ तुवां ॥७८॥ एन्हवीं तरी पार्था। तुज कां नेणों न मनें चित्ता। परी किडाळ हें शोचितां। बहुतीं परीं ॥७९॥

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि। धर्म्याद्धि युद्धात् श्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते ॥३१॥

तूं अझुनि कां न विचारिसी। काय हें चिंतितु आहासी। स्वधर्मु तो विसरलासी। तरावें जेणें ॥१८०॥ या कौरवां भलतें जाहलें। अथवा तुजचि कांहीं पातलें। कीं युगचि हें बुडालें। जन्हीं एथ ॥८१॥ तरी स्वधर्मु एक आहे। तो सर्वथा त्याज्य नोहे। मग तरिजेल काय पाहें। कृपाळूपणें ॥८२॥ अर्जुना तुझें चित्ता। जन्ही जाहलें द्रवीभूता। तन्ही हें अनुचिता। संग्रामसमयीं ॥८३॥ अगा गोक्षीर जरी जाहलें। तरी पथ्यासि नाहीं म्हणितलें। ऐसेनिहि विष होय सुदलें। नवज्वरीं देतां ॥८४॥ तैसें आनी आन करितां। नाशु होईल हिता। म्हणऊनि तूं आतां। सावध होई ॥८५॥ वायांचि व्याकुळ कायी। आपुला निजधर्मु पाहीं। जो आचरितां बाधु नाहीं। कवणें काळीं ॥८६॥ जैसें मार्गेचि चालतां। अपावो न पवे सर्वथा। कां दीपाधारें वर्ततां। नाडळिजे ॥८७॥ तयापरी पार्था। स्वधर्मे राहाटतां। सकळकामपूर्णता। सहजें होय ॥८८॥ म्हणोनि यालागीं पाहीं। तुम्हां क्षत्रियां आणीक कांहीं।

संग्रामावांचूनि नाहीं। उचित जाणें॥ ८९॥ निष्कपटा होआवें। उसिणा घाई जुंझावें। हें असो काय सांगावें। प्रत्यक्षावरी ॥१९०॥

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्। सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥३२॥

अर्जुना झुंज देखें आतांचें। हें हो काज दैव तुमचें। कीं निधान सकळ धर्माचें। प्रगटलें असे ॥१९१॥ हा संग्रामु काय म्हणिपे। कीं स्वर्गुचि येणें रूपें। मूर्त कां प्रतापें। उदो केला ॥१९२॥ ना तरी गुणाचेनि पतिकरें। आर्तीचेनि पडिभरें। हे कीर्तीचि स्वयंवरें। आली तुज ॥१९३॥ क्षत्रियें बहुत पुण्य कीजे। तें झुंज ऐसें हें लाहिजे। जैसें मार्गें जातां आडळिजे। चिंतामणिसी ॥१९४॥ ना तरी जांभया पसरे मुखा। तेथ अवचटें पडे पीयूखा। तैसा संग्रामु हा देखा। पातला असे ॥१९५॥

अथ चेत् त्वमिमं धर्म्यं सङ्ग्रामं न करिष्यसि। ततः स्वधर्म कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ॥३३॥

आतां हा ऐसा अव्हेरिजे। मग नाथिले शोचूं बैसिजे। तरी आपण आहाणा होईजे। आपणपेयां ॥१९६॥ पूर्वजांचें जोडलें। आपणचि होय धाडिलें। जरी आजि शस्त्र सांडिलें। रणीं इये ॥१९७॥ असती कीर्ति जाईल। जगचि आर्भिशापु देईल। आणि गिंवसित पावतील। महादोष ॥१९८॥ जैसी भातारेंहीन वनिता। उपहति पावे सर्वथा। तैशी दशा जीविता। स्वधर्मवीण ॥१९९॥ ना तरी रणीं शव सांडिजे। तें चौमेरी गिधीं विदारिजे। तैसें स्वधर्महीन आर्भिभविजे। महादोषी ॥२००॥

अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम्। संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥३४॥

म्हणोनि स्वधर्म हा सांडसील। तरी पापा वरपडा होसील। आणि अपेश तें न वचेल। कल्पांतवरी ॥१९१॥ जाणतेनि तंवचि जियावें। जंव अपकीर्ति आंगा न पवे। आणि सांग पां केवीं निगावें। एथोनियां ॥२॥ तूं निर्मत्सरु सदयता। येथूनि निघसी कीर माघौता। परी ते गति समस्तां। न मनेल ययां ॥३॥

भयाद् रणादुपरतं मंस्यन्ते त्वां महारथाः। येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥३५॥

हे चहूंकडूनि वेढितील। बाणवरी घेतील। तेथ पार्था न सुटिजेला। कृपाळुपणें ॥४॥ ऐसेनिहि प्राणसंकटें। जरी विपायें पां निघणें घटे। तरी तें जियालेंही वोखटें। मरणाहुनी ॥५॥ तूं आणीकही एक न विचारिसी। एथ संभ्रमें झुंजों आलासी। आणि सकणवपणें निघालासी। मागुता जरी ॥६॥ तरी तुझें तें अर्जुना। या वैरियां दुर्जनां। कां प्रत्यया येईल मना। सांगें मज ॥७॥

अवाच्यवादांश्च बहून् वदिष्यन्ति तवाहिताः। निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम् ॥३६॥

हे म्हणतील गेला रे गेला। अर्जुन आम्हां बिहाला। हा सांगें बोलु उरला। निका कायी ॥८॥ लोक सायासें करुनि बहुतें। कां वेंचिती आपुलीं जीवितें। परी वाढविती कीर्तीतें। धनुर्धरा ॥९॥ ते तुज अनायासें। अनकळित जोडिली असे। हें आर्द्धितीय जैसें। गगन आहे ॥२१०॥ तैसी कीर्ती निःसीमा। तुझ्या ठायीं निरुपमा। तुझे गुण उत्तमा। तिहीं लोकीं ॥११॥ दिगंतीचे भूपति। भाट होऊनि वाखाणिती। जे ऐकिलिया दचकती। कृतांतादिक ॥१२॥ ऐसा महिमा घनवटा। गंगा तैसी चोखटा। जया देखी

जगीं सुभटा वांठ जाहली ॥१३॥ तें पौरुष तुझें अद्भुत। आइकोनियां हे समस्त। जाहले आथि
 विरक्ता जीवितेंसी ॥१४॥ जैसा सिंहाचिया हांका। युगांतु होय मदमुखा। तैसा कौरवां अशेखां।
 धाकु तुझा ॥१५॥ जैसे पर्वत वज्रातें। ना तरी सर्प गरुडातें। तैसे अर्जुना हे तूतें। मानिती सदा
 ॥१६॥ तें अगाधपण जाईल। मग हिणावो अंगा येईल। जरी मागुता निघसील। न झुंजतचि ॥१७॥
 आणि हे पळतां पळों नेदिती। धरुनि अवकळा करिती। न गणित कुटी बोलती। आइकतां तुज
 ॥१८॥ मग ते वेळीं हिये फुटावें। आतां लाठेपणें कां न झुंजावें। हें जितलें तरी भोगावें। पृथ्वीतळ
 ॥१९॥

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्। तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥३७॥

ना तरी रणीं एथा झुंजतां वेंचलें जीविता। तरी स्वर्गसुख अनकळिता। पावसील ॥२२०॥
 म्हणोनि ये गोठी। विचारु न करीं किरीटी। आतां धनुष्य घेऊनि उठीं। झुंजे वेगीं ॥२१॥ देखें स्वधर्मु
 हा आचरतां। दोषु नाशे असता। तुज भ्रांति हे कवण चित्ता। एथ पातकाची ॥२२॥ सांगें प्लवेंचि
 काय बुडिजे। कां मार्गी जातां आडळिजे। परी विपायें चालों नेणिजे। तरी तेंही घडे ॥२३॥ अमृतें
 तरीचि मरिजे। जरी विखेंसीं सेविजे। तैसा स्वधर्मे दोषु पाविजे। हेतुकपणें ॥२४॥ म्हणोनि तुज
 पार्था। हेतु सांडोनि सर्वथा। क्षात्रवृत्ती झुंजतां। पाप नाही ॥२५॥

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ। ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥३८॥

सुखीं संतोषा न यावें। दुःखीं विषादा न भजावें। आणि लाभालाभ न धरावे। मनामार्जी ॥२६॥
 एथ विजयपण होईल। कां सर्वथा देह जाईल। हें आधींचि कांहीं पुढील। चिंतावेना ॥२७॥ आपणयां
 उचिता। स्वधर्मातेंचि रहाटतां। जें पावे तें निवांता। साहोनि जावें ॥२८॥ ऐसेया मनें होआवें। तरी
 दोषु न घडे स्वभावे। म्हणोनि आतां झुंजावें। निभ्रांत तुवां ॥२९॥

एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु। बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि ॥३९॥

हे सांख्यस्थिति मुकुलित। सांगितली तुज एथा। आतां बुद्धियोगु निश्चिता। अवधारीं पां ॥२३०॥
 जया बुद्धियुक्ता। जाहालिया पार्था। कर्मबंधु सर्वथा। बाधूं न पवे ॥३१॥ जैसे वज्रकवच लेइजे। मग
 शस्त्रांचा वर्षावो साहिजे। परी जैतेंसीं उरिजे। अचुंबिता ॥३२॥ तैसें ऐहिक तरी न नशे। आणि मोक्ष
 तो उरला असे। जेथ पूर्वानुक्रम दिसे। चोखाळत ॥३३॥

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते। स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥४०॥

कर्माधारे राहाटिजे। परी कर्मफळ न निरीक्षिजे। जैसा मंत्रज्ञु न बधिजे। भूतबाधा ॥३४॥
 तियापरी जे सुबुद्धि। आपुलाल्या निरवधि। हा असतांचि उपाधि। आकळूं न सके ॥३५॥

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन। बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥४१॥

जेथ न संचरे पुण्यपाप। जें सूक्ष्म आर्ति निष्कंप। गुणत्रयादि लेप। न लगती जेथ ॥३६॥ अर्जुना

ते पुण्यवशं। जरी अल्पचि हृदयीं बुद्धि प्रकाशे। तरी अशेषही नाशे। संसारभय ॥३७॥ जैसी दीपकळिका धाकुटी। परी बहु तेजातें प्रगटी। तैसी सदबुद्धि हे थेकुटी। म्हणों नये ॥३८॥ पार्था बहुतीं परी। हे अपेक्षिजे विचारशूरीं। जे दुर्लभ चराचरीं। सद्वासना ॥३९॥ आणिकासारिखा बहुवसु। जैसा न जोडे परिसु। कां अमृताचा लेशु। दैवगुणें ॥२४०॥ तैसी दुर्लभ जे सदबुद्धि। जिये परमात्माचि अवधि। जैसा गंगेसी उदधि। निरंतर ॥४१॥ तैसा ईश्वरावांचुनि कांहीं। जिये आणीक लाणी नाहीं। ते एकचि बुद्धि पाहीं। अर्जुना जगीं ॥४२॥ येरी ते दुर्मति। जे बहुधा असे विकरती। तेथ निरंतर रमती। आर्विवेकिये ॥४३॥ म्हणोनि तया पार्था। स्वर्ग संसार नरकावस्था। आत्मसुख सर्वथा। दृष्ट नाहीं ॥४४॥

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः । वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ॥४२॥

वेदाधारें बोलती । केवळ कर्म प्रतिष्ठिती। परी कर्मफळीं आसक्ती । धरुनियां ॥४५॥ म्हणती संसारीं जन्मिजे। यज्ञादि कर्म कीजे। मग स्वर्गसुख भोगिजे। मनोहर ॥४६॥ एथ हें वांचूनि कांहीं। आणिक सर्वथा सुखचि नाहीं। ऐसें अर्जुना बोलती पाहीं। दुर्बुद्धि ते ॥४७॥

कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम्। क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ॥४३॥

देखें कामना आर्भिभूता। होऊनि कर्म आचरता। ते केवळ भोगीं चित्ता देऊनियां ॥४८॥ क्रियाविशेषें

बहुतें। न लोपिती विधीतें। निपुण होऊनि धर्मातें। अनुष्ठिती ॥४९॥

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयाऽपहृतचेतसाम्। व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥४४॥

परि एकचि कुडें करिती। जे स्वर्गकामु मनीं धरिती। यज्ञपुरुषा चुकती। भोक्ता जो ॥२५०॥ जैसा कर्पूराचा राशि कीजे। मग आग्नि लाऊनि दीजे। कां मिष्टान्नीं संचरविजे काळकूट ॥५१॥ दैवें अमृतकुंभ जोडला। तो पायें हाणोनि उलंडिला। तैसा नासिती धर्मु निपजला। हेतुकपणें ॥५२॥ सायासें पुण्य आर्जिजे। मग संसारु कां अपेक्षिजे। परी नेणती ते काय कीजे। अप्राप्त देखें ॥५३॥ जैसी रांधवणी रससोय निकी। करुनियां मोलें विकी। तैसा भोगासाठीं आर्विवेकी। धाडिती धर्मु ॥५४॥ म्हणोनि हे पार्था। दुर्बुद्धि देख सर्वथा। तयां वेदवादरतां। मनीं वसे ॥५५॥

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुना। निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान् ॥४५॥

तिन्हीं गुणीं आवृत्ता। हे वेद जाणें निभ्रांता। म्हणोनि उपनिषदादि समस्त। सात्त्विक ते ॥५६॥ येर रजतमात्मक। जेथ निरूपिजे कर्मादिक। जे केवळ स्वर्गसूचक। धनुर्धरा ॥५७॥ म्हणोनि तूं जाण। हे सुखदुःखासीच कारण। एथ झणें अंतःकरण। रिगों देसी ॥५८॥ तूं गुणत्रयातें अव्हेरी। मी माझें हें न करीं। एक आत्मसुख अंतरीं। विसंब झणीं ॥५९॥

यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके। तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥४६॥

जरी वेदें बहुत बोलिलें। विविध भेद सूचिले। तन्ही आपण हित आपुलें। तेंचि घेपे ॥२६०॥

जैसा प्रकटिलया गभस्ती। अशेषही मार्ग दिसती। तरी तेतुलेही काय चालिजती। सांगें मज ॥६१॥
कां उदकमय सकळ। जन्ही जाहलें असे महीतळ। तरी आपण घेपे केवळ। आर्तीचजोगें ॥६२॥
तैसे ज्ञानीये जे होती। ते वेदार्थातें विवरिती। मग अपेक्षित तें स्वीकारिती। शाश्वत जें ॥६३॥

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥४७॥

म्हणोनि आइकें पार्था। याचिपरी पहतां। तुज उचित होय आतां। स्वकर्म हें ॥६४॥ आम्हीं
समस्तही विचारिलें। तंव ऐसेंचि हें मना आलें। जे न संडिजे तुवां आपुलें। विहित कर्म ॥६५॥ परी
कर्मफळीं आस न करावी। आणि कुकर्मिं संगति न व्हावी। हे सत्क्रियाचि आचरावी। हेतूविण ॥६६॥

योगस्थः कुरु कर्माणि संगं त्यक्त्वा धनंजय। सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥४८॥

तूं योगयुक्त होउनी। फळाचा संग सांडुनी। मग अर्जुना चित्त देउनी। करीं कर्म ॥६७॥ परी
आदरिलें कर्म दैवें। जरी समाप्तीतें पावे। तरी विशेषें तेथ तोषावें। हेंही नको ॥६८॥ कां निमित्तें कोणें
एकें। तें सिद्धी न वचत ठाके। तरी तेथिंचेनि अपरितोखें। क्षोभावें ना ॥६९॥ आचरतां सिद्धी गेलें।
तरी काजाचि कीर आलें। परि ठेलियाही सगुण जहालें। ऐसेंचि मानीं ॥७०॥ देखें जेतुलालें कर्म
निपजे। तेतुलें आदिपुरुषीं जरी आर्पिजे। तरी परीपूर्ण सहजें। जहालें जाणें ॥७१॥ देखें संतासंतीं
कर्मीं। हें जें सरिसेपण मनोधर्मीं। तेचि योगस्थिति उत्तमीं। प्रशंसिजे ॥७२॥

दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय। बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ॥४९॥

अर्जुना समत्व चित्ताचें। तेंचि सार जाण योगाचें। जेथ मना आणि बुद्धीचें। ऐक्य आथी ॥७३॥
तो बुद्धियोग विवरितां। बहुतें पाडें पार्था। दिसे हा अरुता। कर्मभागु ॥७४॥ परी तेंचि कर्म आचरिजे।
तरीच हा योग पाविजे। जें कर्मशेष सहजे। योगस्थिति ॥७५॥

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते। तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ॥५०॥

म्हणोनि बुद्धियोगु सधरु। तेथ अर्जुना होई स्थिरु। मनं करीं अव्हेरु। फळहेतूचा ॥७६॥ जे
बुद्धियोगा योजिले। तेचि पारंगत जाहले। इहीं उभयबंधीं सांडिले। पापपुण्यां ॥७७॥

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः। जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ॥५१॥

ते कर्मीं तरी वर्तती। परी कर्मफळा नातळती। आणि यातायाती लोपती। अर्जुना तयां ॥७८॥
मग निरामयभरिता। पावती पद अच्युता। ते बुद्धियोगयुक्ता। धनुर्धरा ॥७९॥ तूं ऐसा तें होसी। जें
मोहातें या सांडिसी। आणि वैराग्य मानसीं। संचरेल ॥८०॥

यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति। तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥५२॥

मग निष्कळंक गहना। उपजेल आत्मज्ञाना। तेणें निचाडें होईल मना। अपैसें तुझें ॥ ८१॥ तेथ
आणिक कांहीं जाणावें। कां मागिलातें स्मरावें। हें अर्जुना आघवें। पारुषेल ॥८२॥

श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला। समाधावचला बुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि ॥५३॥

इंद्रियांचिया संगती। जिये पसरु होतसे मती। ते स्थिर होईल मागुती। आत्मस्वरूपीं ॥८३॥
समाधिसुखीं केवळ। जें बुद्धि होईल निश्चळ। तें पावसी तूं सकळ। योगस्थिति ॥८४॥

अर्जुन उवाच : स्थितप्रज्ञस्य का भाषा समाधिस्थस्य केशव।

स्थितधीः किं प्रभाषेत किमासीत ब्रजेत किम् ॥५४॥

तेथ अर्जुन म्हणे देवा। हाचि आर्भिप्रावो आघवा। मी पुसेन आतां सांगावा। कृपानिधी ॥८५॥
मग अच्युत म्हणे सुखें। जें किरीटी तुज निकें। तें पूस पां उन्मेखें। मनाचेनि ॥८६॥ या बोला पार्थे।
म्हणितलें सांग पां श्रीकृष्णातें। काय म्हणिपे स्थितप्रज्ञातें। वोळखों केवीं ॥८७॥ आणि स्थिरबुद्धि
जो म्हणिजे। तो कैसां चिन्हीं जाणिजे। जो समाधिसुख भुंजे। अखंडित ॥८८॥ तो कवणे स्थिती
असे। कैसेनि रूपीं विलसे। देवा सांगावें हें ऐसें। लक्ष्मीपती ॥८९॥ तंव परब्रह्मअवतरणु। जो
षड्गुणाधिकरणु। तो काय तेथ नारायणु। बोलतु असे ॥२९०॥

श्रीभगवानुवाच : प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्। आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्यते ॥५५॥
म्हणे अर्जुना परियेसीं। जो हा आर्भिलाषु प्रौढ मानसीं। तो अंतराय स्वसुखेंसी। करीत असे
॥९१॥ जो सर्वदा नित्युत्तुम्ह। अंतःकरणभरितु। परी विषयामाजि पतितु। जेणें संगें कीजे ॥९२॥ तो
कामु सर्वथा जाये। जयाचें आत्मतोषीं मन राहे। तोचि स्थितप्रज्ञु होये। पुरुष जाणें ॥९३॥

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः। वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥५६॥

नाना दुःखीं प्राप्तीं। जयासी उद्वेगु नाहीं चितीं। आणि सुखाचिया आर्तीं। अडपैजेना ॥९४॥
अर्जुना तयाचां ठायीं। कामक्रोधु सहजें नाहीं। आणि भयातें नेणे कहीं। परिपूर्ण तो ॥९५॥ ऐसा जो
निरवधि। तो जाण पां स्थिरबुद्धि। जो निरसूनि उपाधि। भेदरहितु ॥९६॥

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्। नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥५७॥

जो सर्वत्र सदा सरिसा। परिपूर्ण चंद्रु कां जैसा। अधमोत्तम प्रकाशा। मार्जी न म्हणे ॥९७॥ ऐसी
अनवछिन्न समता। भूतमात्रीं सदयता। आणि पालटु नाहीं चित्ता। कवणे वेळे ॥९८॥ गोमटें कांहीं
पावे। तरी संतोषें तेणें नाभिभवे। जो ओखटेनि नागवे। विषादासी ॥९९॥ ऐसा हरिखशोकरहितु। जो
आत्मबोधभरितु। तो जाण पां प्रज्ञायुक्तु। धनुर्धरा ॥३००॥

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः। इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥५८॥

कां कूर्म जियापरी। उवाइला अवेव पसरी। ना इच्छावशें आवरी। आपुले आपण ॥१॥ तैसीं
इंद्रियें आपैतीं होती। जयाचें म्हणितलें करिती। तयाची प्रज्ञा जाण स्थिती। पातली असे ॥२॥
आतां अर्जुना आणिकही एका सांगेन ऐकें कवतिका। या विषयांतें साधका त्यजिती नियमं ॥३॥

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः। रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥५९॥

श्रोत्रादि इंद्रियें आवरिती। परि रसने नियमु न करिती। ते सहस्रधा कवळिजती। विषयीं इहीं

॥४॥ जैसी वरिवरी पालवी खुडिजे। आणि मुळीं उदक घालिजे। तरी कैसेनि नाशु निपजे। तया वृक्षा
॥५॥ तो उदकाचेनि बळें आर्थिकें। जैसा आडवेनि आंगें फांके। तैसा मानसीं विषो पोखे। रसनाद्वारें
॥६॥ येरां इंद्रियां विषय तुटे। तैसा नियमूं न ये रस हटें। जे जीवन हें न घटे। येणेंविण ॥७॥ मग
अर्जुना स्वभावं। ऐसियाही नियमातें पावे। जें परब्रह्म अनुभवं। होऊनि जाइजे ॥८॥ तें शरीरभाव
नासती। इंद्रिये विषय विसरती। जें सोहंभावप्रतीति। प्रगट होय ॥९॥

यततो ह्यपि कौन्तेय पुरुषस्य विपश्चितः। इंद्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥६०॥

येन्हवीं तरी अर्जुना। हें आया नये साधना। जे राहटताती जतना। निरंतर ॥३१०॥ जयातें
अभ्यासाची घरटी। यमनियमांची ताटी। जे मनातें सदा मुठी। धरुनि आहाती ॥११॥ तेही किजती
कासाविसी। या इंद्रियांची प्रौढी ऐसी। जैसी मंत्रज्ञातें विवसी। भुलवी कां ॥१२॥ देखें विषय हे तैसे।
पावती ऋद्धिसिद्धीचेनि मिषें। मग आकळिती स्पर्शें। इंद्रियांचेनी ॥१३॥ तिये संधीं मन जाये। मग
अभ्यासीं ठोटावलें ठाये। ऐसें बळकटपण आहे। इंद्रियांचें ॥१४॥

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः। वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥६१॥

म्हणोनि आइकें पार्था। यातें निर्दळी जो सर्वथा। सर्वविषयीं आस्था। सांडूनियां ॥१५॥ तोचि
तूं जाण। योगनिष्ठेसि कारण। जयाचें विषयसुखें अंतःकरण। झकवेना ॥१६॥ जो आत्मबोधयुक्त।

होऊनि असे सतत। जो मातें हृदयाआंतु। विसंबेना ॥१७॥ एन्हवीं बाह्य विषय तरी नाहीं। परी
मानसीं होईल जरी कांही। तरी सांघतुचि हा पाहीं। संसारु असे ॥१८॥ जैसा कां विषाचा लेशु।
घेतलियां होय बहुवसु। मग निभ्रांत करी नाशु। जीवितासि ॥१९॥ तैसी या विषयांची शंका। मनीं
वसती देखा। घातु करी अशेखा। विवेकजाता ॥३२०॥

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते। सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ॥६२॥

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः। स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥६३॥

जरी हृदयीं विषय स्मरती। तरी निसंगाही आपजे संगती। संगी प्रगटे मूर्ति। आर्भिलाषाची
॥२१॥ जेथ कामु उपजला। तेथ क्रोधु आधींचि आला। क्रोधीं असें ठेविला। संमोह जाणें ॥२२॥
संमोहा जालिया व्यक्ति। तरी नाशु पावे स्मृति। चंडवातें ज्योति। आहत जैसी ॥२३॥ कां अस्तमानी
निशी। जैसी सूर्यतेजातें ग्रासी। तैसी दशा स्मृतिभ्रंशीं। प्राणियांसी ॥२४॥ मग अज्ञानांध केवळा
तेणें आप्लविजे सकळा। तेथ बुद्धि होय व्याकुळा। हृदयामार्जी ॥२५॥ जैसें जात्यंधा पळणी पावे। ते
काकुळती सैरा धांवे। तैसे बुद्धिसि होती भवें। धनुर्धरा ॥२६॥ ऐसा स्मृतिभ्रंशु घडे। मग सर्वथा बुद्धि
अवघडे। तेथ समूळ हें उपडे। ज्ञानजात ॥२७॥ चैतन्याचां भ्रंशीं। शरीरा दशा जैशी। तैशी पुरुषा
बुद्धिनाशीं। होय देखें ॥२८॥ म्हणोनि आइकें अर्जुना। जैसा विस्फुलिंग लागे इंधना। मग तो प्रौढ
जालिया त्रिभुवना। पुरों शके ॥२९॥ तैसें विषयांचें ध्याना। जरी विपायें वाहे मन । तरी येसणें हें

पतन। गिंवसीत पावे ॥३३०॥

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्। आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥६४॥

म्हणोनि विषय हे आघवे। सर्वथा मनौनि सांडावे। मग रागद्वेष स्वभावे। नाशतील ॥३१॥ पार्था
आणिकही एक। जरी नाशले रागद्वेष। तरी इंद्रियां विषयीं बाधक। रमतां नाहीं ॥३२॥ जैसा सूर्य
आकाशगतु। रश्मिकरीं जगातें स्पर्शतु। तरी संगदोषें काय लिंपतु। तेथिंचेनि ॥३३॥ तैसा इंद्रियार्थी
उदासीन। आत्मरसेंचि निर्भिन्ना। जो कामक्रोधविहीन। होऊनि असे ॥३४॥ तरी विषयांतुही कांहीं।
आपणपेंवाचुनि नाहीं। मग विषय कवण कायी। बाधितील कवणा ॥३५॥ जरी उदकें उदकीं बुडिजे।
कां आग्नि आगीं पोळिजे। तरी विषयसंगे आप्लविजे। परिपूर्ण तो ॥३६॥ ऐसा आपणचि केवळा
होऊनि असे निखळा। तयाची प्रज्ञा अचळा। निभ्रांत मानीं ॥३७॥

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते। प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥६५॥

देखें अखंडित प्रसन्नता। आथी जेथ चित्ता। तेथ रिगणें नाहीं समस्तां। संसारदुःखां ॥३८॥
जैसा अमृताचा निर्झरु। प्रसवे जयाचा जठरु। तया क्षुधेतृषेचा अडदरु। कहींचि नाहीं ॥३९॥ तैसें
हृदय प्रसन्न होये। तरी दुःख कैचें कें आहे। तेथ आपैसी बुद्धि राहे। परमात्मरूपीं ॥३४०॥ जैसा
निर्वातीचा दीपु। सर्वथा नेणे कंपु। तैसा स्थिरबुद्धि स्वस्वरूपु। योगयुक्तु ॥४१॥

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना। न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ॥६६॥

ये युक्तीचि कडसणी। नाहीं जयाचां अंतःकरणीं। तो आकळिला जाण गुणीं। विषयादिकीं॥
४२॥ तया स्थिरबुद्धि पार्था। कहीं नाहीं सर्वथा। आणि स्थैर्याची आस्था। तेही नुपजे॥४३॥
निश्चळत्वाची भावना। जरी नव्हेचि देखें मना। तरी शांति केवी अर्जुना। आपु होय॥४४॥ आणि जेथ
शांतीचा जिव्हाळा नाहीं। तेथ सुख विसरोनि न रिगे कहीं। जैसा पापियाचां ठायीं। मोक्षु न वसे॥४५॥
देखें आग्नमार्जीं घापती। तिये बीजें जरी विरूढती। तरी अशांता सुखप्राप्ती। घडों शके॥४६॥
म्हणोनि अयुक्तपण मनाचें। तेंचि सर्वस्व दुःखाचें। या कारणें इंद्रियांचें। दमन निकें॥४७॥

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते। तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नाविमिबाम्भसि॥६७॥

यें इंद्रियें जें जें म्हणती। तें तेंचि जे पुरुष करिती। ते तरलेचि न तरती। विषयसिंधु॥४८॥ जैसी
नाव थडिये ठाकितां। जरी वरपडी होय दुर्वाता। तरी चुकलाही मागौता। अपावो पावे॥४९॥ तैसीं
प्राप्तेही पुरुषें। इंद्रियें लाळिलीं जरी कौतुकें। तरी आक्रमिला देख दुःखें। सांसारिकें॥ ३५०॥

तस्माद् यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः। इंद्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥६८॥

म्हणोनि आपुलीं आपणपेया। जरी यें इंद्रियें येती आया। तरी आर्थिक कांहीं धनंजया। सार्थक
असे॥५१॥ देखें कूर्म जियापरी। उवाइला अवयव पसरी। ना तरी इच्छावशें आवरी। आपणपेंचि॥५२॥
तैसीं इंद्रियें आपैतीं होती। जयाचें म्हणितलें करिती। तयाची प्रज्ञा जाण स्थिती। पातली असे॥५३॥

आतां आणिक एक गहन। पूर्णाचें चिन्ह। अर्जुना तुज सांगेना परिस पां॥५४॥

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी। यस्यां जग्राति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः॥६९॥

देखें भूतजात निदेलें। तेथेंचि जया पाहलें। आणि जीव जेथ चेइले। तेथ निद्रितु जो॥५५॥

तोचि तो निरुपाधि। अर्जुना तो स्थिरबुद्धि। तोचि जाणें निरवधि। मुनीश्वरा॥५६॥

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।

तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी॥७०॥

पार्था आणीकही परी। तो जाणों येईल अवधारीं। जैसी अक्षोभता सागरीं। अखंडिता॥५७॥
जरी सरितावोघ समस्ता। परिपूर्ण होऊनि मिळता। तरी आर्धिक नोहे ईषत्। मर्यादा न संडी॥५८॥
ना तरी ग्रीष्मकाळीं सरिता। शोषूनि जाती समस्ता। परी न्यून नव्हे पार्था। समुद्र जैसा॥५९॥ तैसा
प्राप्तीं ऋद्धिसिद्धी। तयासि क्षोभु नाही बुद्धी। आणि न पवतां न बाधी। अधृति तयातें॥६०॥ सांगें
सूर्याचां घरीं। प्रकाशु काय वातीवेरी। कीं न लविजे तरी अंधारीं। कोंडेल तो॥६१॥ देखें ऋद्धिसिद्धि
तयापरी। आलीगेली से न करी। तो विगुंतला असे अंतरीं। महासुखीं॥६२॥ जो आपुलेनि नागरपणें।
इंद्रभुवनातें पाबळें म्हणे। तो केवीं रंजे पालिवणें। भिल्लांचेनि॥६३॥ जो अमृतासि ठी ठेवी। तो जैसा
कांजी न सेवी। तैसा स्वसुखानुभवी। न भोगी ऋद्धि॥६४॥ पार्था नवल हें पाहीं। जेथ स्वर्गसुख

लेखनीय नाही। तेथ ऋद्धिसिद्धि कायी। प्राकृता होती॥६५॥

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निस्पृहः। निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति॥७१॥

ऐसा आत्मबोधें तोषला। जो परमानंदें पोखला। तोचि स्थिरप्रज्ञु भला। वोळख तूं॥६६॥ तो
अहंकारातें दंडुनी। सकळ कामु सांडोनी। विचरे विश्व होऊनि। विश्वाचि मार्जीं॥६७॥

एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति। स्थित्वास्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति॥७२॥

हे ब्रह्मस्थिति निःसीमा। जे अनुभवितां निष्कामा। पातले परब्रह्म। अनायासें॥६८॥ जे चिद्रूपीं
मिळतां। देहांतीची व्याकुळता। आड ठाकों न शके चित्ता। प्राज्ञा जया॥६९॥ तेचि हे स्थिति।
स्वमुखें श्रीपति। सांगत अर्जुनाप्रति। संजय म्हणे॥७०॥ ऐसें कृष्णवाक्य ऐकिलें। तेथ अर्जुनें मनीं
म्हणितलें। आतां आमुच्याचि काजा आलें। उपपत्ती इया ॥७१॥ जें कर्मजात आघवे। एथ निराकारिलें
देवें। तरी पारुषलें म्यां झुंजावें। म्हणूनियां ॥७२॥ ऐसा श्रीअच्युताचिया बोला। चित्तीं धनुर्धरु
उवायिला। आतां प्रश्नु करील भला। आशंकोनियां ॥७३॥ तो प्रसंगु असे नागरु। जो सकळ धर्मासि
आगरु। कीं विवेकामृतसागरु। प्रांतहीनु ॥७४॥ जो आपण सर्वज्ञनाथु। निरूपिता होईल श्रीअनंतु।
ते ज्ञानदेवो सांगेल मातु। निवृत्तिदासु ॥७५॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानसंन्यासयोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः

॥२॥

(श्लोक ७२, ओव्या ३७५)

ॐ श्रीसच्चिदानन्दार्पणमस्तु:

॥श्री॥

॥ज्ञानेश्वरी॥

अध्याय तिसरा

अर्जुन उवाच : ज्यायसी चेत् कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन।

तत् किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव ॥१॥

मग आइका अर्जुनें म्हणितलें। देवा तुम्हीं जें वाक्य बोलिलें। तें निकें म्यां परिसलें। कमळापती ॥१॥ तेथ कर्म आणि कर्ता। उरेचिना पाहतां। ऐसें मत तुझें अनंता। निश्चित जरी ॥२॥ तरी मातें केवी हरी। म्हणसी पार्था संग्रामु करीं। इये लाजसीना महाघोरीं। कर्मी सुतां ॥३॥ हां गा कर्म तूंचि अशेष। निराकरिसी निःशेष। तरी मजकरवीं हें हिंसका कां करविसी तूं ॥४॥ तरी हेंचि विचारीं हृषीकेशा। तूं मानु देसी कर्मलेशा। आणि येसणी हे हिंसा। करवीत अहासी ॥५॥

व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे। तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥२॥

देवा तुवांचि ऐसें बोलावें। तरी आम्हीं नेणतीं काय करावें। आतां संपलें म्हण पां आघवें। विवेकाचें ॥६॥ हां गा उपदेशु जरी ऐसा। तरी अपभ्रंशु तो कैसा। आतां पुरला आम्हां धिवसा। आत्मबोधाचा ॥७॥ वैद्यु पथ्य वारुनि जाये। मग जरी आपणचि विष सुये। तरी रोगिया कैसेनि जिये। सांगें मज ॥८॥ जैसें आंधळे सुईजे आव्हांटा। कां माजवण दीजे मर्कटा। तैसा उपदेशु हा गोमटा। वोढवला आम्हां ॥९॥ मी आधींचि कांहीं नेणें। वरी कवळिलों मोहें येणें। कृष्णा विवेकु या कारणें। पुसिला तुज ॥१०॥ तंव तुझी एकेकी नवाई। एथ उपदेशामाजिं गांवाई। तरी अनुसरलिया काई। ऐसें कीजे ॥११॥ आम्हीं तनुमनुजीवें। तुझिया बोला वोटंगावें। आणि तुवांचि ऐसें करावें। तरी सरलें म्हणे ॥१२॥ आतां ऐसियापरी बोधिसी। तरी निकें आम्हां करिसी। एथ ज्ञानाची आस कायसी। अर्जुन म्हणे ॥१३॥ तरी ये जाणिवेचें कीर सरलें। परी आणीक एक असें जाहलें। जें थितें हें डहुळलें। मानस माझें ॥१४॥ तेवींचि कृष्णा हें तुझें। चरित्र कांहीं नेणिजे। जरी चित्त पाहसी माझें। येणें मिषें ॥१५॥ ना तरी झकवीतु आहासी मातें। कीं तत्त्वचि कथिलें ध्वनितें। हें अवगमितां निरुतें। जाणवेना ॥१६॥ म्हणोनि आइकें देवा। हा भावार्थु आतां न बोलावा। मज विवेकु सांगावा। मन्हाटा जी ॥१७॥ मी अत्यंत जड असें। परी ऐसाही निकें परियसें। कृष्णा बोलावें तुवां तैसें। एकनिष्ठ ॥१८॥ देखें रोगातें जिणावें। औषध तरी देयावें। परी तें आर्तिरुच्य व्हावें। मधुर जैसें ॥१९॥ तैसें

सकळार्थभरिता। तत्त्व तरी सांगावें उचिता। परी बोधे माझें चित्ता जयापरी ॥२०॥ देवा तुजऐसा
निजगुरू। आजि आर्तीधणी कां न करूं। एथ भीड कवणाची धरूं। तूं माय आमुची ॥२१॥ हां गा
कामधेनूचें दुभतें। दैवें जाहलें जरी आपैतें। तरी कामनेची कां तेथें। वानी कीजे ॥२२॥ जरी
चिंतामणी हातां चढे। तरी वांछेचें कवण सांकडें। कां आपुलेनि सुरवाडें। इच्छावें ना ॥२३॥ देखें
अमृतसिंधुतें ठाकावें। मग ताहाना जरी फुटावें। तरी सायासु कां करावे। मागील ते ॥२४॥ तैसा
जन्मांतरीं बहुतीं। उपासितां लक्ष्मीपती। तूं दैवें आजि हातीं। जाहलासी जरी ॥२५॥ तरी आपुलिया
सवेसा। कां न मगावासि परेशा। देवा सुकाळु हा मानसा। पाहला असे ॥२६॥ देखें सकळार्तीचें
जियालें। आजि पुण्य यशासि आलें। हें मनोरथ जहाले। विजयी माझे ॥२७॥ जी जी परममंगळधामा।
देवदेवोत्तमा। तूं स्वाधीन आजि आम्हां। म्हणऊनियां ॥२८॥ जैसैं मातेचां ठायीं। अपत्या अनवसरु
नाहीं। स्तन्यालागूनि पाहीं। जियापरी ॥२९॥ तैसैं देवा तूतें। पुसिजतसैं आवडे तें। आपुलेनि आतें।
कृपानिधि ॥३०॥ तरी पारत्रिकीं हिता। आणि आचरितां तरी उचिता। तें सांगें एक निश्चिता। पार्थु म्हणे
॥३१॥

श्रीभगवानुवाच : लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयाऽनघ।

ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ॥३॥

या बोला अच्युतु। म्हणतसे विस्मितु। अर्जुना हा ध्वनितु। आर्भिप्रावो ॥३२॥ जे बुद्धियोगु
सांगतां। सांख्यमतसंस्था। प्रगटिली स्वभावता। प्रसंगें आम्हीं ॥३३॥ तो उद्देशु तूं नेणसीचि।
म्हणोनि क्षोभलासि वायांचि। तरी आतां जाण म्यांचि। उक्त दोन्ही ॥३४॥ अवधारीं वीरश्रेष्ठा। ये
लोकीं या दोन्ही निष्ठा। मजचिपासूनि प्रगटा। अनादिसिद्धा ॥३५॥ एकु ज्ञानयोगु म्हणिजे। जो
सांख्यीं अनुष्ठिजे। जेथ ओळखीसवें पाविजे। तदरूपता ॥३६॥ एक कर्मयोगु जाण। जेथ साधकजन
निपुण। होऊनिया निर्वाण। पावती वेळे ॥३७॥ हे मार्गु तरी दोनी। परि एकवटती निदानीं। जैसी
सिद्धसाध्यभोजनीं। तृप्ति एकी ॥३८॥ कां पूर्वापर सरिता। भिन्ना दिसती पाहतां। मग सिंधुमिळणीं
ऐक्यता। पावती शेखीं ॥३९॥ तैसीं दोनी ये मते। सूचिती एका कारणातें। परी उपास्ति ते योग्यते।
आधीन असे ॥४०॥ देखें उत्प्लवनासरिसां। पक्षी फळासि झोंबे जैसा। सांगें नरु केवीं तैसा। पावे
वेगां ॥४१॥ तो हळूहळू ढाळेंढाळें। केतुकेनि एकें वेळें। मार्गाचेनि बळें। निश्चित ठाकी ॥४२॥ तैसैं
देख पां विहंगममते। आर्धिष्ठूनि ज्ञानातें। सांख्य सद्य मोक्षातें। आकळिती ॥४३॥ येर योगिये
कर्माधारे। विहितेंचि निजाचारें। पूर्णता अवसरें। पावते होती ॥४४॥

न कर्मणामनारम्भान् नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते। न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥४॥

वांचोनि कर्मरंभ उचिता। न करितांचि सिद्धवता। कर्महीना निश्चिता। होईजेना ॥४५॥ कां
प्राप्तकर्म सांडिजे। येतुलेनि नैष्कर्म्या होईजे। हें अर्जुना वायां बोलिजे। मूर्खपणें ॥४६॥ सांगें पैलतीरा

जावें। ऐसें व्यसन कां जेथ पावे। तेथ नावेतें त्यजावें। घडे केवीं ॥४७॥ ना तरी तृप्ति इच्छिजे। तरी कैसेनि पाकु न कीजे। कीं सिद्धुही न सेविजे। केवीं सांगें ॥४८॥

न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्। कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥५॥

जंव निरार्तता नाहीं। तंव व्यापारु असे पाहीं। मग संतुष्टीचां ठायीं। कुंठे सहजें ॥४९॥ म्हणोनि आइकें पार्था। जया नैष्कर्म्यपदीं आस्था। तया उचित कर्म सर्वथा। त्याज्य नोहे ॥५०॥ आणि आपुलालिया चाडे। आपादिलें हें मांडे। कीं त्यजिलें कर्म सांडे। ऐसें आहे ॥५१॥ हें वायांचि सैरा बोलिजे। उकलु तरी देखों पाहिजे। परी त्यजितां कर्म न त्यजे। निभ्रांत मानीं ॥५२॥ जंव प्रकृतीचें आर्धिष्ठान। तंव सांडी मांडी हें अज्ञान। जे चेष्टा ते गुणाधीन। आपैसी असे ॥५३॥ देखें विहित कर्म जेतुलें। तें सळें जरी वोसंडिलें। तरी स्वभाव काय निमाले। इंद्रियांचे ॥५४॥ सांगें श्रवणीं ऐकावें ठेलें। कीं नेत्रींचें तेज गेलें। हें नासारंध्र बुझालें। परिमळु नेघे ॥५५॥ ना तरी प्राणापानगति। कीं निर्विकल्प जाहली मति। कीं क्षुधातृषादि आर्ति। खुंटलिया ॥५६॥ हे स्वप्नावबोधु ठेले। कीं चरण चालों विसरले। हें असो काय निमाले। जन्ममृत्यू ॥५७॥ हें न ठकेचि जरी कांहीं। तरी सांडिलें तें कायी। म्हणोनि कर्मत्यागु नाहीं। प्रकृतिमंतां ॥५८॥ कर्म पराधीनपणें। निपजतसे प्रकृतिगुणें। येरीं धरीं मोकलीं अंतःकरणें। वाहिजे वायां ॥५९॥ देखें रथीं आरुढिजे। मग जरी निश्चळा बैसिजे। तरी चळा

होऊन हिंडिजे। परतंत्रा ॥६०॥ कां उचलिलें वायुवशें। चळे शुष्क पत्र जैसें। निचेष्ट आकाशे। परिभ्रमे ॥६१॥ तैसें प्रकृतिआधारें। कर्मेन्द्रियविकारें। निष्कर्म्युही व्यापारे। निरंतर ॥६२॥ म्हणऊनि संगु जंव प्रकृतीचा। तंव त्यागु न घडे कर्माचा। ऐसियाहि करुं म्हणती तयांचा। आग्रहोचि उरे ॥६३॥

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्। इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥६॥

जे उचित कर्म सांडिती। मग नैष्कर्म्य होऊं पाहती। परी कर्मेन्द्रियप्रवृत्ती। निरोधुनी ॥६४॥ तयां कर्मत्यागु न घडे। जें कर्तव्य मनीं सांपडे। वरी नटती तें फुडें। दरिद्र जाण ॥६५॥ ऐसे ते पार्था। विषयासक्त सर्वथा। ओळखावे तत्त्वता। येथ भ्रांति नाही ॥६६॥

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्याऽऽरभतेऽर्जुन। कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥७॥

आतां देई अवधान। प्रसंगें तुज सांगेना। या नैराश्याचें चिन्ह। धनुर्धरा ॥६७॥ जो अंतरीं दृढ। परमात्मरूपीं गूढ। बाह्य तरी रूढ। लौकिकु जैसा ॥६८॥ तो इंद्रियां आज्ञा न करी। विषयांचें भय न धरी। प्राप्त कर्म न अव्हेरी। उचित जें जें ॥६९॥ तो कर्मेन्द्रियें कर्मी। राहटतां तरी न नियमी। परी तेथिंचेनि उर्मी। झांकोळेना ॥७०॥ तो कामनामात्रें न घेपे। मोहमळें न लिंपे। जैसें जळीं जळें न शिंपे। पद्मपत्र ॥७१॥ तैसा संसर्गामाजि असे। सकळांसारिखा दिसे। जैसें तोयसंगें आभासे। भानुबिंब ॥७२॥ तैसा सामान्यत्वं पाहिजे। तरी साधारणुचि देखिजे। येरवीं निर्धारितां नेणिजे। सोय जयाची ॥७३॥ ऐसां चिन्हीं चिन्हितु। देखसी तोचि मुक्तु। आशापाशरहितु। वोळख पां ॥७४॥ अर्जुना

तोचि योगी। विशेषिजे जो जगीं। म्हणोनि ऐसा होय यालागीं। म्हणिपे तूतें ॥७५॥

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः। शरीरयात्राऽपि च ते न प्रसिद्धयेदकर्मणः ॥८॥

तूं मानसा नियमु करीं। निश्चळु होय अंतरीं। मग कर्मद्वियें हीं व्यापारीं। वर्ततु सुखें ॥७६॥
म्हणशी नैष्कर्म्य होआवें। तरी एथ तें न संभवे। आणि निषिद्ध केवीं राहाटावें। विचारिं पां ॥७७॥
म्हणोनि जें जें उचिता। आणि अवसरेंकरुनि प्राप्त। तें कर्म हेतुरहिता। आचर तूं ॥७८॥ पार्था
आणीकही एक। नेणसी तूं हें कवतिका। जें ऐसें कर्म मोचका। आपैसें असे ॥७९॥ देखें अनुक्रमाधारे।
स्वधर्मु जो आचरे। तो मोक्षु तेणें व्यापारें। निश्चित पावे ॥८०॥

यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः। तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर ॥९॥

स्वधर्मु जो बापा। तोचि नित्ययज्ञु जाण पां। म्हणोनि वर्ततां तेथ पापा। संचारु नाहीं ॥८१॥
हा निजधर्मु जें सांडे। कुकर्मी रति घडे। तेंचि बंधु पडे। संसारिकु ॥८२॥ म्हणोनि स्वधर्मानुष्ठाना। तें
अखंड यज्ञयाजना। जो करी तया बंधना। कहींच नाहीं ॥८३॥ हा लोका कर्म बांधिला। जो परतंत्रा
भुतला। तो नित्य यज्ञातें चुकला। म्हणोनियां ॥८४॥

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः। अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥९०॥

आतां येचिविशीं पार्था। तुज सांगेन एकी मी कथा। जें सृष्ट्यादि संस्था। ब्रह्मेनि केली ॥८५॥

तें नित्ययागसहितें। सृजिलीं भूतें समस्तें। परी नेणतीचि तियें यज्ञातें। सूक्ष्म म्हणउनी ॥८६॥ ते
वेळीं प्रजीं विनविला ब्रह्मा। देवा आश्रयो काय एथ आम्हां। तंव म्हणे तो कमळजन्मा। भूतांप्रति
॥८७॥ तुम्हां वर्णविशेषवशें। आम्हीं हा स्वधर्मुचि विहिला असे। यातें उपासा मग आपैसे। काम
पुरती ॥८८॥ तुम्हीं व्रतें नियमु न करावे। शरीरातें न पीडावें। दुरी केंही न वचावें। तीर्थासी गा
॥८९॥ योगादिकें साधनें। साकांक्ष आराधनें। मंत्रयंत्रविधानें। झणीं करा ॥९०॥ देवतांतरा न
भजावें। हें सर्वथा कांहीं न करावें। तुम्हीं स्वधर्मयज्ञीं यजावें। अनायासे ॥९१॥ अहेतुकें चितें। अनुष्ठा
पां ययातें। पतिव्रता पतीतें। जियापरी ॥९२॥ तैसा स्वधर्मरूप मखु। हाचि सेव्यु तुम्हां एका। ऐसें
सत्यलोकनायकु। म्हणता जहाला ॥९३॥ देखा स्वधर्मतिं भजाला। तरी कामधेनु हा होईला। मग
प्रजाहो न संडीला। तुमतें सदा ॥९४॥

देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः। परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥९१॥

जें येणेंकरुनि समस्तां। परितोषु होईल देवतां। मग ते तुम्हां ईप्सिता। अर्थातें देती ॥९५॥ या
स्वधर्मपूजा पूजितां। देवतागणां समस्तां। योगक्षेमु निश्चिता। करिती तुमचा ॥९६॥ तुम्ही देवतांतें
भजाला। देव तुम्हां तुष्टतीला। ऐसी परस्परें घडेल। प्रीति जेथ ॥९७॥ तेथ तुम्ही जें करुं म्हणाला।
तें आपैसें सिद्धी जाईल। वांछितही पुरेल। मानसींचें ॥९८॥ वाचासिद्धी पावाल। आज्ञापक होआला।
म्हणिये तुमतें मागतीला। महाऋद्धि ॥९९॥ जैसें ऋतुपतीचें द्वारा। वनश्री निरंतर। वोळगे फळभारा।

लावण्येंसी ॥१००॥

इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः। तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः ॥१२॥

तैसें सर्व सुखेंसहिता। दैवचि मूर्तिमंता। येईल देखा काढता। तुम्हांपाठीं ॥१॥ ऐसे समस्त भोगभरिता। होआल तुम्ही अनार्ता। जरी स्वधर्मैकनिरता। वर्ताल बापा ॥२॥ कां जालिया सकल संपदा। जो अनुसरेल इंद्रियमदा। लुब्ध होऊनियां स्वादा। विषयांचिया ॥३॥ तिहीं यज्ञभाविकीं सुरीं। जे हे संपत्ति दिधली पुरी। तयां स्वमार्गीं सर्वेश्वरीं। न भजेल जो ॥४॥ आग्निमुखीं हवन। न करील देवतापूजना। प्राप्त वेळे भोजना। ब्राह्मणाचें ॥५॥ विमुखु होईल गुरुभक्ती। आदरु न करील आर्तिथी। संतोषु नेदील ज्ञाती। आपुलिये ॥६॥ ऐसा स्वधर्मक्रियारहितु। आथिलेपणें प्रमत्तु। केवळ भोगासक्तु। होईल जो ॥७॥ तया मग अपावो थोरु आहे। जेणें तें हातींचें सकळ जाये। देखा प्राप्तही न लाहे। भोग भोगूं ॥८॥ जैसें गतायुषी शरीरीं। चैतन्य वासु न करी। कां निदैवाचां घरीं। न राहे लक्ष्मी ॥९॥ तैसा स्वधर्म जरी लोपला। तरी सर्व सुखांचा थारा मोडला। जैसा दीपासवें हरपला। प्रकाशु जाय ॥१०॥ तैसी निजवृत्ति जेथ सांडे। तेथ स्वतंत्रते वस्ती न घडे। आइका प्रजाहो हें फुडें। विरंचि म्हणे ॥११॥ म्हणऊनि स्वधर्म जो सांडील। तयातें काळु दंडील। चोरु म्हणूनि हरील। सर्वस्व तयाचें ॥१२॥ मग सकळ दोष भंवते। गिंवसोनि घेती तयातें। रात्रिसमयीं स्मशानातें। भूतें

जैशीं ॥१३॥ तैशीं त्रिभुवनींचीं दुःखें। आणि नानाविधें पातकें। दैन्यजात तितुकें। तेथेंचि वसे ॥१४॥ ऐसें होय तया उन्मत्ता। मग न सुटे बापा रुदतां। परी कल्पांतींहीं सर्वथा। प्राणिगण हो ॥१५॥ म्हणऊनि निजवृत्ति हे न संडावी। इंद्रियें बरळों नेदावीं। ऐसें प्रजातें शिकवी। चतुराननु ॥१६॥ जैसें जळचरा जळ सांडे। आणि तत्क्षणीं मरण मांडे। हा स्वधर्म तेणें पाडें। विसंबों नये ॥१७॥ म्हणोनि तुम्हीं समस्तीं। आपुलालिया कर्मीं उचितीं। निरत व्हावें पुढतपुढती। म्हणिपत असे ॥१८॥

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः। भुङ्क्ते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥१३॥

देखा विहित क्रियाविधी। निहंतुका बुद्धी। जो असतिये समृद्धी। विनियोगु करी ॥१९॥ गुरु गोत्र आग्नि पूजी। अवसरीं भजे द्विजीं। निमित्तादिकीं यजी। पितरोद्देशें ॥२०॥ या यज्ञक्रिया उचिता। यज्ञेंशीं हवन करितां। हुतशेष स्वभावतः। उरे जें जें ॥२१॥ तें सुखें आपुलां घरीं। कुटुंबेंसीं भोजन करी। कीं भोग्यचि तें निवारी। कल्मषातें ॥२२॥ तें यज्ञावशिष्ट भोगी। म्हणोनि सांडिजे तो अर्घीं। जयापरी महारोगीं। अमृतसिद्धी ॥२३॥ कीं तत्त्वनिष्ठु जैसा। नागवे भ्रांतिलेशा। तो शेषभोगी तैसा। नाकळे दोषा ॥२४॥ म्हणोनि स्वधर्म जें अर्जे। तें स्वधर्म चि विनियोगिजे। मग उरे तें भोगिजे। संतोषेंसीं ॥२५॥ हें वांचूनि पार्था। राहाटों नये अन्यथा। ऐसी आद्य हे कथा। मुरारी सांगे ॥२६॥ जे देहचि आपणपें मानिती। आणि विषयांतें भोग्य म्हणती। यापरतें न स्मरती। आणिक कांहीं

॥२७॥ हे यज्ञोपकरण सकळ। नेणतसांते बरळ। अहंबुद्धी केवळ। भोगूं पाहती ॥२८॥ इंद्रियरुचीसारखे।
करविती पाक निके। ते पापिये पातकें। सेविती जाण ॥२९॥ जे संपत्तिजात आघवें। हें हवनद्रव्य
मानावें। मग स्वधर्मयज्ञें अर्पावें। आदिपुरुषीं ॥१३०॥ हें सांडोनिया मूर्ख। आपणपेयांलागीं देखा
निपजविती पाका। नानाविध ॥३१॥ जिहीं यज्ञ सिद्धी जाये। परेशा तोषु होये। तें हें सामान्य अन्न
न होये। म्हणोनियां ॥३२॥ हें न म्हणावें साधारण। अन्न ब्रह्मरूप जाण। जे जीवनहेतु कारणा। विश्वा
यया ॥३३॥

अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः। यज्ञाद् भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥१४॥

अन्नास्तव भूतें। प्ररोह पावति समस्तें। मग वरिषु या अन्नातें। सर्वत्र प्रसवे ॥३४॥ तया पर्जन्या
यज्ञीं जन्म। यज्ञातें प्रगटी कर्म। कर्मासि आदि ब्रह्म। वेदरूप ॥३५॥

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवं। तस्मात् सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥१५॥

मग वेदांतें परापरा। प्रसवतसे अक्षरा। म्हणऊनि हें चराचरा। ब्रह्मबद्ध ॥३६॥ परी कर्माचिये
मूर्ती। यज्ञीं आर्धिवासु श्रुती। ऐकें सुभद्रापती। अखंड गा ॥३७॥

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः। अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥१६॥

ऐशी हे आदि परंपरा। संक्षेपें तुज धनुर्धरा। सांगितली या अध्वरा। लागौनियां ॥३८॥ म्हनूनि

समूळ हा उचितु। स्वधर्मरूप क्रतु। नानुष्ठी जो मत्तु। लोकीं झये ॥३९॥ तो पातकांची राशी। जाण
भार भूमीसी। जो कुकर्में इंद्रियांसी। उपेगा गेला ॥१४०॥ तें जन्म कर्म सकळ। अर्जुना आर्ति
निष्फळ। जैसें कां अभ्रपटळ। अकाळींचें ॥४१॥ कां गळा स्तन अजेचे। तैसें जियालें देखें तयाचें।
जया अनुष्ठान स्वधर्माचें। घडेचिना ॥४२॥ म्हणोनि ऐकें पांडवा। हा स्वधर्मु कवणें न संडावा।
सर्वभावे भजावा। हाचि एकु ॥४३॥ हां गा शरीर जरी जाहलें। तरी कर्तव्य वोघें आलें। मग उचित
कां आपुलें। वोसंडावें ॥४४॥ परिस पां सव्यसाची। मूर्ती लाहोनि देहाची। खंती करिती कर्माची। ते
गांवडे गा ॥४५॥

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः। आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥१७॥

देखें असतेनि देहधर्मे। एथ तोचि एकु न लिंपे कर्मे। जो अखंडित रमे। आपणपांचि ॥४६॥ जे
तो आत्मबोधें तोषला। तरी कृतकार्यु देखें जाहला। म्हणोनि सहजें सांडवला। कर्मसंगु ॥४७॥

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन। न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥१८॥

तृप्ति जालिया जैसीं। साधनें सरती आपैसीं। देखें आत्मतुष्टी तैसीं। कर्मे नाहीं ॥४८॥ जंववरी
अर्जुना। तो बोध भेटेना मना। तंवचि यया साधना। भजावें लागे ॥४९॥

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचरा। असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥१९॥

म्हणऊनि तूं नियतु। सकळ कामरहितु। होऊनियां उचितु। स्वधर्मे रहाटें ॥१५०॥ जे स्वकर्मे

निष्कामता॥ अनुसरले पार्था॥ ते कैवल्य पर तत्त्वतां॥ पातले जर्गीं ॥५१॥

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः। लोकसंग्रहमेवापि संपश्यन् कर्तुमर्हसि ॥२०॥

देख पां जनकादिका कर्मजात अशेखा॥ न सांडितां मोक्षसुखा॥ पावते जाहले ॥५२॥ याकारणें पार्था॥ होआवी कर्मीं आस्था॥ हे आणिकाहि एकां अर्था॥ उपकारेल ॥५३॥

यद् यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः। स यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥२१॥

जे आचरतां आपणपेयां॥ देखी लागेल लोका यया॥ तरी चुकेल हा अपाया॥ प्रसंगेंचि ॥५४॥ देखें प्रामार्थ जाहले॥ जे निष्कामता पावले॥ तयाही कर्तव्य असे उरलें॥ लोकांलागीं ॥५५॥ मार्गीं अंधासरिसा॥ पुढें देखणाही चाले जैसा॥ अज्ञाना प्रकटावा धर्मु तैसा॥ आचरोनि ॥५६॥ हा गा ऐसें जरी न कीजे॥ तरी अज्ञानां काय वोजे॥ तिहीं कवणेपरी जाणिजे॥ मार्गातें या ॥५७॥ एथ वडील जें जें करिती॥ तया नाम धर्मु ठेविती॥ तेंचि येर अनुष्ठिती॥ सामान्य सकळ ॥५८॥ हें ऐसें असे स्वभावे॥ म्हणोनि कर्म न संडावें॥ विशेषें आचरावें॥ लागे संतीं ॥५९॥

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन। नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ॥२२॥

आतां आणिकाचिया गोठी॥ तुज सांगों काई किरीटी॥ देखें मीचि इये राहाटी॥ वर्तत असें ॥१६०॥ काय सांकडें कांहीं मातें॥ कीं कवणें एकें आतें॥ आचरें मी धर्मातें॥ म्हणसी जरी ॥६१॥

तरी पुरतेपणालागीं॥ आणिक दुसरा नाहीं जर्गीं॥ ऐसी सामुग्री माझां अंगीं॥ जाणसी तूं ॥६२॥ मृत गुरुपुत्र आणिला॥ तो तुवां पवाडा देखिला॥ तोही मी उगला॥ कर्मीं वर्ते ॥६३॥ परी स्वधर्मीं वर्ते कैसा॥ साकांक्षु कां होय जैसा॥ तयाचि एका उद्देशा॥ लागोनिया ॥६४॥

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः। मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥२३॥

जे भूतजात सकळ॥ असे आम्हांचि आधीन केवळ॥ तरी न व्हावें बरळ॥ म्हणोनियां ॥६५॥ आम्ही पूर्णकाम होउनी॥ जरी आत्मस्थिती राहुनी॥ तरी प्रजा हे कैसेनि॥ निस्तरेल ॥६६॥ इहीं आमुची वास पाहावी॥ मग वर्तती परी जाणावी॥ ते लौकिक स्थिति आघवी॥ नासिली होईल ॥६७॥

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्या कर्म चेदहम्। संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥२४॥

म्हणोनि समर्थु जो एथें॥ आथिला सर्वज्ञते॥ तेणें सविशेषें कर्मातें॥ त्यजावें ना ॥६८॥

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत। कुर्याद् विद्वांस्तथाऽसक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥२५॥

देखें फळाचिया आशा॥ आचरे कामुकु जैसा॥ कर्मीं भरु होआवा तैसा॥ निराशाही ॥६९॥ जे पुढतपुढती पार्था॥ हे सकळ लोकसंस्था॥ रक्षणीय सर्वथा॥ म्हणऊनियां ॥१७०॥ मार्गाधारें वर्तावें॥ विश्व हें मोहरें लावावें॥ अलौकिक नोहावें॥ लोकांप्रति ॥७१॥ जें सायासें स्तन्य सेवी॥ तें पक्कात्रें केवीं जेवी॥ म्हणोनि बाळका जैशीं नेदावीं॥ धनुर्धरा ॥७२॥

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनाम्। जोषयेत् सर्व कर्माणि विद्वान् युक्तः समाचरन् ॥२६॥

तैशीं कर्मी जया अयोग्यता। तयाप्रति नैष्कर्म्यता। न प्रगटावी खेळतां। आदिकरुनी ॥७३॥
तेथें सत्क्रियाचि लावावी। तेचि एकी प्रशंसावी। नैष्कर्मीही दावावी। आचरोनी ॥७४॥ तया
लोकसंग्रहालागीं। वर्ततां कर्मसंगीं। तो कर्मबंधु आंगीं। वाजेलना ॥७५॥ जैसी बहुरूपियाची रावो
राणी। स्त्रीपुरुषभावो नाहीं मनीं। परी लोकसंपादणी। तैशीच करिती ॥७६॥

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः। अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥२७॥

देखें पुढिलाचें वोझें। जरी आपुलां माथां घेईजे। तरी सांगें कां न दाटिजे। धनुर्धरा ॥७७॥ तैसीं
शुभाशुभें कर्में। जियें निफजती प्रकृतिधर्में। तियें मूर्ख मतिभ्रमें। मी कर्ता म्हणे ॥७८॥ ऐसा
अहंकाराधिरूढ। एकदेशी मूढ। तया हा परमार्थ गूढ। प्रगटावा ना ॥७९॥ हें असो प्रस्तुत। सांगिजेल
तुज हित। तें अर्जुना देऊनि चित्त। अवधारीं पां ॥९८०॥

तत्त्ववित् तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः। गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते ॥२८॥

जें तत्त्वज्ञानियांचां ठायीं। तो प्रकृतिभावो नाहीं। जेथ कर्मजात पाहीं। निपजत असे ॥८१॥ ते
देहाभिमानु सांडुनी। गुणकर्में वोलांडुनी। साक्षीभूत होउनी। वर्तती देहीं ॥८२॥ म्हणूनि शरीरी जरी
होती। तरी कर्मबंधा नाकळती। जैसा कां भूतचेष्टा गभस्ती। घेपवेना ॥८३॥

प्रकृतेर्गुणसंमूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु। तानकृत्स्नविदो मन्दान् कृत्स्नविन् न विचालयेत् ॥२९॥

एथ कर्मी तोचि लिंपे। जो गुणसंभ्रमें घेपे। प्रकृतीचेनि आटोपें। वर्ततु असे ॥८४॥ इंद्रियें
गुणाधारे। राहाटती निजव्यापारे। तें परकर्म बलात्कारें। आपादी जो ॥८५॥

मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याध्यात्मचेतसा। निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ॥३०॥

तरी उचितें कर्में आघवीं। तुवां आचरोनि मज अर्पावीं। परी चित्तवृत्ति न्यासावी। आत्मरूपीं
॥८६॥ हें कर्म मी कर्ता। कां आचरेन या अर्था। ऐसा आर्भिमानु झणें चित्ता। रिगों देसी ॥८७॥ तुवां
शरीरपरा नोहावें। कामनाजात सांडावें। मग अवसरोचित भोगावे। भोग सकळ ॥८८॥ आतां कोदंड
घेऊनि हातीं। आरूढ पां इये रथीं। देई आलिंगन वीरवृत्ती। समाधानें ॥८९॥ जगीं कीर्ति रूढवीं।
स्वधर्माचा मानु वाढवीं। यया भारापासोनि सोडवीं। मेदिनी हे ॥९०॥ आतां पार्था निःशंकु होई।
या संग्रामा चित्त देई। एथ हें वांचूनि कांहीं। बोलों नये ॥९१॥

ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः। श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः ॥३१॥

हें अनुपरोध मत माझें। जिहीं परमादरें स्वीकारिजे। श्रद्धापूर्वक अनुष्ठिजे। धनुर्धरा ॥९२॥ तेही
सकळ कर्मी वर्ततु। जाण पां कर्मरहितु। म्हणोनि हें निश्चितु। करणीय गा ॥९३॥

ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नानुतिष्ठन्ति मे मतम्। सर्वज्ञानविमूढांस्तान् विद्धि नष्टानचेतसः ॥३२॥

नातरी प्रकृतिमंतु होउनी। इंद्रिया लळा देउनी। जे हें माझें मत अव्हेरुनी। ओसंडिती ॥९४॥
जे सामान्यत्वं लेखिती। अवज्ञा करुनि देखिती। कां हा अर्थवादु म्हणती। वाचाळपणें ॥९५॥ ते

मोहमदिरा भ्रमले। विषयविखें घारले। अज्ञानपंकीं बुडाले। निभ्रांत मानीं ॥९६॥ देखें शवाचां हातीं
दिधलें। जैसें कां रत्न वायां गेलें। नातरी जात्यंधा पाहलें। प्रमाण नोहे ॥९७॥ कां चंद्राचा उदयो
जैसा। उपयोगा नवचे वायसा। मूर्खा विवेकु हा तैसा। रुचेल ना ॥९८॥ तैसे ते पार्था। जे विमुख या
परमार्था। तयांसी संभाषण सर्वथा। करावेना ॥९९॥ म्हणोनि ते न मानिती। आणि निंदाही करुं
लागती। सांगें पतंग काय साहती। प्रकाशातें ॥१००॥ पतंगा दीपीं आलिंगना। तेथ त्यासी अचुक
मरण। तेवीं विषयाचरण। आत्मघाता ॥१०१॥

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि। प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ॥३३॥

म्हणोनि इंद्रियें एकें। जाणतेनि पुरुखें। लाळावीं ना कौतुकें। आदिकरुनी ॥१०२॥ हां गा सर्पेंसी
खेळों येईल। कीं व्याघ्रसंसर्ग सिद्धी जाईल। सांगें हाळाहाळ जिरेल। सेविलिया काई ॥१०३॥ देखें
खेळतां आग्नि लागला। मग तो न सांवरे जैसा उधवला। तैसा इंद्रियां लळा दिधला। भला नोहे ॥१०४॥
एन्हवीं तरी अर्जुना। या शरीरा पराधीना। कां नाना भोगरचना। मेळवावी ॥१०५॥ आपण सायासेंकरुनि
बहुतें। सकळहि समृद्धिजातें। उदोअस्तु या देहातें। प्रतिपाळावें कां ॥१०६॥ सर्वस्वें शिणोनि एथें।
अर्जवावीं संपत्तिजातें। तेणें स्वधर्मु सांडूनि देहातें। पोखावें काई ॥१०७॥ मग हें तंव पांचमेळावा। शेखीं
अनुसरेल

पंचत्वा। ते वेळीं केला कें गिंवसावा। शीणु आपुला ॥१०८॥ म्हणूनि केवळ देहभरण। ते जाणें उघडी
नागवण। यालागीं एथ अंतःकरणा देयावेना ॥१०९॥

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ। तयोर्न वशमागच्छेत् तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ॥३४॥

एन्हवीं इंद्रियांचियां अर्था। सारिखा विषयो पोखितां। संतोषु कीर चित्ता। आपजेल ॥१०१०॥
परी तो संवचोराचा सांगातु। जैसा नावेक स्वस्थु। जंव नगराचा प्रांतु। सांडिजेना ॥१०११॥ बापा
विषाची मधुरता। झणें आवडी उपजे चित्ता। परी तो परिणाम विचारिता। प्राणु हरी ॥१०१२॥ देखें
इंद्रियीं कामु असे। तो लावी सुखदुराशे। जैसा गळीं मीनु आमिषें। भुलविजे गा ॥१०१३॥ परी तयामाजी
गळु आहे। जो प्राणातें घेऊनि जाये। तो जैसा ठाउवा नोहे। झांकलेपणें ॥१०१४॥ तैसे आर्भिलाषें येणें
कीजेला। जरी विषयाची आशा धरिजेला। तरी वरपडा होईजेला। क्रोधानळा ॥१०१५॥ जैसा कवळोनिया
पारधी। घातेचिये संधी। आणी मृगातें बुद्धी। साधावया ॥१०१६॥ एथ तैसीची परी आहे। म्हणूनि संगु
हा तुज नोहे। पार्था दोन्ही कामक्रोध हे। घातुक जाणें ॥१०१७॥ म्हणऊनि हा आश्रोचि न करावा।
मनींही आठवो न धरावा। एकु निजवृत्तीचा वोलावा। नासों नेदीं ॥१०१८॥

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्। स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥३५॥

अगा स्वधर्मु हा आपुला। जरी कां कठिणु जाहला। तरी हाचि अनुष्ठिला। भला देखें ॥१०१९॥ येरु

आचारु जो परावा। तो देखतां कीर बरवा। परी आचरतेनि आचरावा। आपुलाचि ॥२०॥ सांगें
 शूद्रघरीं आघवीं। पक्कानें आहाति बरवीं। तीं द्विजें केवीं सेवावी। दुर्बळु जरी जाहला ॥२१॥ हें
 अनुचित कैसेनि कीजे। अप्राप्य केवीं इच्छेजे। अथवा इच्छिलेंही पाविजे। विचारीं पां ॥२२॥ तरी
 लोकांचीं धवळारें। देखोनियां मनोहरें। असतीं आपुलीं तणारें। मोडावीं केवीं ॥२३॥ हें असो वनिता
 आपुली। कुरूप जरी जाहली। तरी भोगितां तेचि भली। जियापरी ॥२४॥ तेवीं आवडे तैसा सांकडु।
 आचरतां जरी दुवाडु। तरी स्वधर्मुचि सुरवाडु। पारत्रिकीचा ॥२५॥ हां गा साकर आणि दूधा हें गौल्य
 कीर प्रसिद्ध। परी कृमिदोषीं विरुद्ध। घेपे केवीं ॥२६॥ ऐसेनिही जरी सेविजेला तरी ते आळुकीची
 उरेला जे तें परिणामीं पथ्य नव्हेला धनुर्धरा ॥२७॥ म्हणोनि आणिकांसी जें विहिता आणि
 आपणपेयां अनुचिता तें नाचरावें जरी हिता विचारिजे ॥२८॥ या स्वधर्मातें अनुष्ठितां वेचु होईल
 जीविता। तोहि निका वर उभयतां। दिसत असे ॥२९॥

अर्जुन उवाच : अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः। आर्निच्छन्नपि वाष्ण्येय बलादिव नियोजितः ॥३६॥

ऐसें समस्तसुरशिरोमणी। बोलिले जेथ श्रीशाङ्गपाणी। तेथ अर्जुन म्हणे विनवणी। असे देवा
 ॥२३०॥ हें जें तुम्हीं सांगितलें। तें सकळ कीर म्यां परिसलें। परी आतां पुसेन कांहीं आपुलें।
 अपेक्षित ॥३१॥ तरी देवा हें ऐसें कैसें। जे ज्ञानियांचीही स्थिति भ्रंशे। मार्गु सांडुनि अनारिसे। चालत

देखों ॥३२॥ सर्वजुही जे होती। हे उपायही जाणती। तेही परधर्मे व्यभिचरति। कवणें गुणें ॥३१॥
 बीजा आणि भुसा। अंधु निवाडु नेणे जैसा। नावेक देखणाही तैसा। बरळे कां पां ॥३४॥ जे असता
 संगु सांडिती। तेचि संसर्गु करितां न धाती। वनवासीही सेविती। जनपदातें ॥३५॥ आपण तरी
 लपती। सर्वस्वें पाप चुकविती। परी बलात्कारें सुइजती। तयाचि मार्जी ॥३६॥ जयांची जीवें घेती
 विवसी। तेचि जडोनि ठाके जीवेंसीं। चुकविती ते गिंवसी। तयातेंचि ॥३७॥ ऐसा बलात्कारु एकु
 दिसे। तो कवणाचा एथ आग्रहो असे। हें बोलावें हृषीकेशें। पार्थु म्हणे ॥३८॥

श्री भगवानुवाच :- काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः।

महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥३७॥

तंव हृदयकमळआरामु। जो योगियांचा निष्कामकामु। तो म्हणतसे पुरुषोत्तमु। सांगेन आइक
 ॥३९॥ तरी हे काम क्रोधु पाहीं। जयातें कृपेची साठवण नाही। हे कृतांताचां ठायीं। मानिजती
 ॥२४०॥ हे ज्ञाननिधीचे भुजंग। विषयदरींचे वाघ। भजनमार्गींचे मांग। मारक जे ॥४१॥ हे देहदुर्गीचे
 धोंड। इंद्रियग्रामींचें कोंड। यांचें व्यामोहादिक बंड। जगावरी ॥४२॥ हे रजोगुण मानसाचे। समूळ
 आसुरियेचे। धायपण ययांचें। आर्विद्या केलें ॥४३॥ हे रजाचे कीर जाहले। परी तमासी पढियंते भले।
 तेणें निजपद यां दिधलें। प्रमादमोहो ॥४४॥ हे मृत्यूचां नगरीं। मानिजती निकियापरी। जे जीविताचे
 वैरी। म्हणऊनियां ॥४५॥ जयांसि भुकेलियां आमिषा। हें विश्व न पुरेचि घांसा। कुळवाडी यांची

आशा। चाळीत असे ॥४६॥ कौतुकें कवळितां मुठी। जिये चवदा भुवनें थेंकुटीं। ते भ्रांति तिये
 धाकुटीं। वाल्हीदुल्ही ॥४७॥ जे लोकत्रयाचें भातुकें। खेळतांचि खाय कवतिकें। तिच्या दासीपणाचेनि
 बिकें। तृष्णा जिये ॥४८॥ हें असो मोहें मानिजे। यातें अहंकारें घेपे दीजें। जेणें जग आपुलेनि भोजें।
 नाचवीत असे ॥४९॥ जेणें सत्याचा भोकसा काढिला। मग अकृत्य तृणकुटा भरिला। तो दंभु
 रुढविला। जर्गीं इहीं ॥२५०॥ साध्वी शांति नागविली। मग माया मांगी श्रृंगारिली। तियेकरवीं
 विटाळविलीं। साधुवृंदें ॥५१॥ इहीं विवेकाची त्राय फेडिली। वैराग्याची खाली काढिली। जितया
 मान मोडिली। उपशमाची ॥५२॥ इहीं संतोषवन खांडिलें। धैर्यदुर्ग पाडिले। आनंदरोप सांडिलें।
 उपडूनियां ॥५३॥ इहीं बोधाचीं रोपें लुंचिलीं। सुखाची लिपि पुसिली। जिव्हारीं आगी सूदली।
 तापत्रयाची ॥५४॥ हे आंगा तंव घडले। जीवींचि आथी जडले। परी नातुडती गिंवसिले। ब्रह्मादिका
 ॥५५॥ हे चैतन्याचे शेजारीं। वसती ज्ञानाचां एका हारीं। म्हणोनि प्रवर्तले महामारी। सांवरती ना
 ॥५६॥ हे जळेंवीण बुडविती। आगीवीण जाळिती। न बोलतां कवळिती। प्राणियांतें ॥५७॥ हे
 शस्त्रेंवीण साधिती। दोरेंवीण बांधिती। ज्ञानियासी तरी वधिती। पैज घेउनी ॥५८॥ हे चिखलेंवीण
 रोंविती। पाशिकेंवीण गोंविती। हे कवणाजोगे न होती। आंतौटेपणें ॥५९॥

धूमेना त्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च। यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥३८॥

जैसी चंदनाची मुळी। गिंवसोनि घेपे व्याळीं। ना तरी उल्बाची खोळी। गर्भस्थासी ॥२६०॥ कां
 प्रभावीण भानु। धूमेंवीण हुताशनु। जैसा दर्पण मळहीनु। कहींच नसे ॥६१॥ तैसें इहींवीण एकलें।
 आम्हीं ज्ञान नाहीं देखिलें। जैसें कोंडेनि पां गुंतलें। बीज निपजे ॥६२॥

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा। कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ॥३९॥

तैसें ज्ञान तरी शुद्ध। परी इहीं असे प्ररुद्ध। म्हणोनि तें अगाधा होऊनि ठेलें ॥६३॥ आधीं यातें
 जिणावें। मग तें ज्ञान पावावें। तंव पराभवो न संभवे। रागद्वेषां ॥६४॥ यातें साधावयालागीं। जें बळ
 आणिजे आंगीं। तें इंधन जैसें आगी। सावावो होय ॥६५॥

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते। एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥४०॥

तैसे उपाय कीजती जे जे। ते यांसीचि होती विरजे। म्हणोनि हटियांतें जिणिजे। इहींचि जर्गीं
 ॥६६॥ ऐसियांही सांकडां बोला। एक उपायो आहे भला। तो करितां जरी आंगवला। तरी सांगेन तुज
 ॥६७॥

तस्मात् त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभा। पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥४१॥

यांचा पहिला कुरुठा इंद्रियें। एथून प्रवृत्ति कर्मातें विये। आधीं निर्दळूनि घालीं तियें। सर्वथैवा
 ॥६८॥

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः। मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥४२॥

मग मनाची धांव पारुषेला आणि बुद्धीची सोडवण होईल। इतुकेनि थारा मोडेल। या पापियांचा
॥६९॥

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना॥ जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥४३॥

हे अंतरीहूनि जरी फिटले। तरी निभ्रांत जाण निवटले। जैसैं रश्मीवीण उरलें। मृगजळ नाही
॥२७०॥ तैसे रागद्वेष जरी निमाले। तरी ब्रह्मीचें स्वराज्य आलें। मग तो भोगी सुख आपुलें।
आपणचि ॥७१॥ जे गुरुशिष्यांची गोठी। पदपिंडाची गांठी। तेथ स्थिर राहोनि नुठीं। कवणे काळीं
॥७२॥ ऐसैं सकळ सिद्धांचा रावो। देवी लक्ष्मीयेचा नाहो। राया ऐक देवदेवो। बोलता जाहला ॥७३॥
आतां पुनरपि तो अनंतु। आद्य एकी मातु। सांगेल तेथ पंडुसुतु। प्रश्नु करील ॥७४॥ तया बोलाचा
हन पाडु। का रसवृत्तीचा निवाडु। येणें श्रोतयां होईल सुरवाडु। श्रवणसुखाचा ॥७५॥ ज्ञानदेवो म्हणे
निवृत्तीचा। चांग उठावा करुनि उन्मेषाचा। मग संवादु श्रीहरिपार्थाचा। भोगा बापा ॥२७६॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मयोगो नाम तृतीयोऽध्यायः।

(श्लोक ४३; ओव्या २७६)

श्रीसच्चिदानन्दार्पणमस्तु।

॥श्री॥

॥ज्ञानेश्वरी॥

अध्याय चौथा

आजि श्रवणेंद्रिया पिकलें। जे येणें गीतानिधान देखिलें। आतां स्वप्नचि हें तुकलें। साचासरिसें
॥१॥ आधींचि विवेकाची गोटी। वरी प्रतिपादी कृष्ण जगजेटी। आणि भक्तराजु किरीटी। परिसत
असे ॥२॥ जैसा पंचमालापु सुगंधु। कीं परिमळु आणि सुस्वादु। तें भला जाहला विनोदु। कथेचा इये
॥३॥ कैसी आगळिक दैवाची। जै गंगा वोळली अमृताची। हो कां जपतपें श्रोतयांचीं। फळा आलीं
॥४॥ आतां इंद्रियजात आघवें। तिहीं श्रवणाचें घर रिघावें। मग संवादसुख भोगावें। गीताख्य हें
॥५॥ हा आर्तिसो आर्तिप्रसंगें। सांडूनि कथाचि ते सांगें। कृष्णार्जुनु दोघे। बोलत होते ॥६॥ ते वेळीं
संजयो रायातें म्हणे। अर्जुनु आर्धिष्ठिला दैवगुणें। जे आर्तिप्रीती नारायणें। बोलिजतु असे ॥७॥ जें
न संगेचि पितया वसुदेवासी। जें न संगेचि माते देवकीसी। जें न संगेचि बळिभद्रासी। तें गुह्य

अर्जुनेंशीं बोलत ॥८॥ देवी लक्ष्मीयेवढी जवळिक। तेही न देखे या प्रेमाचें सुखा। आजि कृष्णरत्नेहाचें
पिक। यातेंचि आथी ॥९॥ सनकादिकांचिया आशा। वाढीनल्या होतिया कीर बहुवसा। परी त्याही
येणें मानें यशा। येतीचिना ॥१०॥ या जगदीश्वराचें प्रेमा। एथ दिसतसे निरुपमा। कैसें पार्थे येणें
सर्वोत्तमा। पुण्य केलें ॥११॥ हो कां जयाचिया प्रीती। अमूर्त हा आला व्यक्ती। मज एकवंची याची
स्थिती। आवडतु असे ॥१२॥ एहवीं हा योगियां नाडळे। वेदार्थासी नाकळे। जेथ ध्यानाचेही डोळे।
पावतीना ॥१३॥ तें हा निजस्वरूपा। अनादि निष्कंपा। परी कवणें मानें सकृप। जाहला आहे ॥१४॥
हा त्रैलोक्यपटाची घडी। आकाराची पैलथडी। कैसा याचिये आवडी। आवरला असे ॥१५॥

श्रीभगवानुवाच : इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।

विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥१॥

मग देव म्हणे अगा पंडुसुता। हाचि योगु आम्हीं विवस्वता। कथिला परी ते वार्ता। बहुवां
दिवसांची ॥१६॥ मग तेणें विवस्वतें रवी। हे योगस्थिति आघवी। निरूपिली बरवी। मनूप्रती ॥१७॥
मनूनें आपण अनुष्ठिली। मग इक्ष्वाकुवा उपदेशिली। ऐसी परंपरा विस्तारिली। आद्य हे गा ॥१८॥

एवं परंपराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः। स कालेनेह महता योगो नष्टः परंतप ॥२॥

मग आणिकहि या योगातें। राजर्षि जाहले जाणते। परि तेथोनि आतां सांप्रतें। नेणिजे कोणी
॥१९॥ जे प्राणिया कामीं भरु। देहाचिवरी आदरु। म्हणोनि पडिला विसरु। आत्मबोधाचा ॥२०॥

अव्हांटलिया आस्थाबुद्धि। विषयसुखचि परमावधि। जीवु तैसा उपाधि। आवडे लोकां ॥२१॥
एन्हवीं तरी खवणेयांचां गांवीं। पाटाउवें काय करावीं। सांगें जात्यंधा रवी। काय आथी ॥२२॥ कां
बहिरयांचां आस्थानीं। कवण गीतातें मानी। कीं कोल्हेया चांदणीं। आवडी उपजे ॥२३॥ पै चंद्रोदया
आरौतें। जयांचे डोळे फुटती असते। ते काउळे केवीं चंद्रातें। वोळखती ॥२४॥ तैसे वैराग्याची शिव
न देखती। जे विवेकाची भाष नेणती। ते मूर्ख केंवीं पावती। मज ईश्वरातें ॥२५॥ कैसा नेणों मोहो
वाढीनला। तेणें बहुतेक काळु व्यर्थ गेला। म्हणोनि योगु हा लोपला। लोकीं इये ॥२६॥

स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः। भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ॥३॥

तोचि हा आजि आतां। तुजप्रती कुंतीसुता। सांगितला आम्हीं तत्त्वता। भ्रांति न करीं ॥२७॥
हें जीवींचें निज गुज। परी केवीं राखों तुज। जे पढियेसी तूं मज। म्हणऊनियां ॥२८॥ तूं प्रेमाचा
पुतळा। भक्तीचा जिव्हाळा। मैत्रियेची चित्कळा। धनुर्धरा ॥२९॥ तूं अनुसंगाचा ठावो। आतां तुज
काय वंचूं जावों। जरी संग्रामारूढ आहों। जाहलों आम्ही ॥३०॥ तरी नावेक हें सहावें। गाजाबज्यही
न धरावें। परी तुझें अज्ञानत्व हरावें। लागे आधीं ॥३१॥

अर्जुन उवाच : अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः। कथमेतद् विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ॥४॥

तंव अर्जुन म्हणे हरी। माय आपुलेयाचा स्नेहो करी। एथ विस्मयो काय अवधारीं। कृपानिधी

॥३२॥ तूं संसारश्रांतांची साउली। अनाथा जीवांची माउली। आमुतें कीर प्रसवली। तुझीच कृपा
॥३३॥ देवा पांगुळ एकादें विडजे। तरी जन्मौनि जोजारु साहिजे। हें बोलों काय तुझें। तुजचि पुढां
॥३४॥ आतां पुसेन जें मी कांहीं। तेथ निकें चित्त देई। तेवींचि देवें कोपावें ना कांहीं। बोला एका
॥३५॥ तरी मागील जे वार्ता। तुवां सांगितली होती अनंता। ते नावेक मज चित्ता। मानेचिना ॥३६॥
जे तो विवस्वतु म्हणजे कायी। ऐसें हें वडिलां ठाउवें नाहीं। तरी तुवांचि केवीं पाहीं। उपदेशिला
॥३७॥ तो तरी आइकिजे बहुतां काळांचा। आणि तूं तंव कृष्ण सांपेचा। म्हणोनि गा इये मातुचा।
विसंवादु ॥३८॥ तेवींचि देवा चरित्र तुझें। आपण कांहीं काय जाणिजे। हें लटिकें केवीं म्हणिजे।
एकिहेळा ॥३९॥ परी हेचि मातु आघवी। मी परियेसें तैशी सांगावी। जे तुवांचि तया रवी केवीं।
उपदेशु केला ॥४०॥

श्रीभगवानुवाच : - बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन। तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परंतप ॥५॥

तंव कृष्ण म्हणे पंडुसुता। तो विवस्वतु जें होता। तें आम्ही नसों ऐसी चित्ता। भ्रांति जरी तुज
॥४१॥ तरी तूं गा हें नेणसी। पै जन्में आम्हांतुम्हांसी। बहुते गेलीं परी तिथें न स्मरसी। आपलीं तूं
॥४२॥ मी जेणें जेणें अवसरें। जें जें होऊनि अवतरें। तें समस्तही स्मरें। धनुर्धरा ॥४३॥

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्। प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया ॥६॥

म्हणोनि आघवें। मागील मज आठवें। मी अजुही परि संभवे। प्रकृतियोगें ॥४४॥ माझें अव्ययत्व

तरी न नसे। परी होणें जाणें एक दिसे। तें प्रतिबिंबे मायावशें। माझांचि ठायीं ॥४५॥ माझी स्वतंत्रता
तरी न मोडे। परी कर्माधीनु ऐसा आवडे। तेंही भ्रांतिबुद्धि तरी घडे। एन्हवीं नाहीं ॥४६॥ कीं एकचि
दिसे दुसरें। तें दर्पणाचेनि आधारे। एन्हवीं काय वस्तुविचारे। दुजें आहे ॥४७॥ तैसा अमूर्तचि मी
किरीटी। परी प्रकृति जें आर्धिष्टीं। तें साकारपणें नटें नटी। कार्यालागीं ॥४८॥

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥७॥

जे धर्मजात आघवें। युगायुगीं म्यां रक्षावें। ऐसा ओघु हा स्वभावे। आद्य असे ॥४९॥ म्हणोनि
अजत्व परतें ठेवीं। मी अव्यक्तपणही नाठवीं। जे वेळीं धर्मातें आर्भिभवी। अधर्मु हा ॥५०॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥८॥

ते वेळीं आपुल्याचेनि कैवारे। मी साकारु होऊनि अवतरे। मग अज्ञानाचें आंधारें। गिळूनि घालीं
॥५१॥ अधर्माची अवधी तोडीं। दोषांचीं लिहिलीं फाडीं। सज्जनांकरवीं गुढी। सुखाची उभवीं ॥५२॥
दैत्यांची कुळें नाशीं। साधूंचा मानु गिवशीं। धर्मासीं नीतीशीं। शेंज भरीं ॥५३॥ मी आर्विवेकाची
काजळी। फेडूनि विवेकदीप उजळीं। तें योगियां पाहे दिवाळी। निरंतर ॥५४॥ स्वसुखें विश्व कोंदे।
धर्मचि जगीं नांदे। भक्तां निघती दोंदें। सात्विकाचीं ॥५५॥ तें पापाचा अचळु फिटे। पुण्याची पहाट
फुटे। जें मूर्ति माझी प्रगटे। पंडुकुमरा ॥५६॥ ऐसेया काजालागीं। अवतरे मी युगीं युगीं। परि हेंचि

वोळखे जो जगीं। तो विवेकिया ॥५७॥

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः। त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥९॥

माझें अजत्वे जन्मणें। आर्क्रियताचि कर्म करणें। हें आर्विकार जो जाणे। तो परममुक्ता ॥५८॥
तो चालिला संगें न चळे। देहींचा देहा नाकळे। मग पंचत्वीं तंव मिळे। माझांचि रूपीं ॥५९॥

वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः। बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ॥१०॥

एन्हवीं परापर न शोचिती। जे कामनाशून्य होती। वाटा केंवेळीं न वचती। क्रोधाचिया ॥६०॥
जे सदा मियांचि आथिले। माझिया सेवा जियाले। कां आत्मबोधें तोषले। वीतराग जे ॥६१॥ जे
तपोतेजाचिया राशी। कां एकायतन ज्ञानासी। जे पवित्रता तीर्थासी। तीर्थरूप ॥६२॥ ते मद्भावा
सहजें आले। मी तेचि ते होऊनि ठेले। जे मज तयां उरले। पदर नाहीं ॥६३॥ सांगे पितळेची
गंधिकाळिका जें फिटली होय निःशेखा। तें सुवर्ण काई आणिका जोडूं जाईजे ॥६४॥ तैसे यमनियमीं
कडसले। जे तपोज्ञानीं चोखाळले। मी तेचि ते जाहले। एथ संशयो कायसा ॥६५॥

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्। मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥११॥

एन्हवीं तरी पाहीं। जे जैसें माझां ठाईं। भजती तया मीही। तैसाचि भजें ॥६६॥ देखें मनुष्यजात
सकळा। हें स्वभावता भजनशीळा। जाहलें असे केवळा। माझां ठायीं ॥६७॥

काङ्क्षन्तःकर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः। क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ॥१२॥

परी ज्ञानेवीण नाशिले। जे बुद्धिभेदासी आले। तेणेंचि या कल्पिलें। अनेकत्व ॥६८॥ म्हणऊनि अभेदीं भेदु देखिती। यया अनाम्या नामें ठेति। देवी देवो म्हणती। अचर्चातें ॥६९॥ जें सर्वत्र सदा समा। तेथ विभाग अधमोत्तमा। मतिवशें संभ्रमा। विवंचिती ॥७०॥ मग नानाहेतुप्रकारें। यथोचितें उपचारें। मानिलीं देवतांतरे। उपासिती ॥७१॥ तेथ जें जें अपेक्षित। तें तैसेंचि पावती समस्ता। परी तें कर्मफळ निश्चिता। वोळख तूं ॥७२॥ वांचूनि देतें घेतें आणिका। निभ्रांत नाहीं सम्यका। एथ कर्मचि फळसूचका। मनुष्यलोकीं ॥७३॥ जैसें क्षेत्रीं जें पेरिजे। तेंवांचूनि आन न निपजे। कां पाहिजे तेंचि देखिजे। दर्पणाधारे ॥७४॥ नातरी कडेयातळवटीं। जैसा आपुलाचि बोलु किरीटी। पडिसादु होऊनि उठी। निमित्तयोगें ॥७५॥ तैसा समस्तां यां भजनां। मी साक्षिभूतु पै अर्जुना। एथ प्रतिफळे भावना। आपुलाली ॥७६॥

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः। तस्य कर्तारमपि मां विद्ध्यकर्तारमव्ययम् ॥१३॥

आतां याचिपरी जाणा। चान्ही आहेती हे वर्ण। सृजिले म्यां गुण। कर्मभागें ॥७७॥ जे प्रकृतीचेनि आधारे। गुणाचेनि व्यभिचारें। कर्म तदनुसारे। विवंचिलीं ॥७८॥ एथ एकचि हे धनुष्यपाणी। परी जाहले गा चहूं वर्णीं। ऐसी गुणकर्मीं कडसणी। केली सहजें ॥७९॥ म्हणोनि आईकें पार्था। हे वर्णभेदसंस्था। मी कर्ता नव्हें सर्वथा। याचिलार्गीं ॥८०॥

न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा। इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते ॥१४॥

हें मजचिस्तव जाहलें। परी म्यां नाहीं केलें। ऐसें जेणें जाणितलें। तो सुटला गा ॥८१॥

एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः। कुरु कर्मैव तस्मात् त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ॥१५॥

मागील मुमुक्षु जे होते। तिहीं ऐशियाचि जाणोनि मातें। कर्म केलीं समस्ते। धनुर्धरा ॥८२॥ परि तें बीजें जैसीं दग्धलीं। नुगवतीचि पेरिलीं। तैशीं कर्म चि परि तयां जाहलीं। मोक्षहेतु ॥८३॥ एथ आणिकही एक अर्जुना। हे कर्माकर्मविवंचना। आपुलिये चाडे सज्जाना। योग्य नोहे ॥८४॥

किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः। तत् ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज् ज्ञात्वा मोक्षयसेऽशुभात् ॥१६॥

कर्म म्हणिजे तें कवणा। अथवा अकर्मा काय लक्षणा। ऐसें विचारितां विचक्षणा। गुंफोनि ठेले ॥८५॥ जैसें कां कुडें नाणें। खन्याचेनि सारखेपणें। डोळ्याचेंहि देखणें। संशयीं घाली ॥८६॥ तैसें नैष्कर्म्यतेचेनि भ्रमें। गिंवसिजत आहाती कर्म। जे दुजी सृष्टि मनोधर्म। करूं सकती ॥८७॥ वांचूनि मूर्खाची गोठी कायसी। एथ मोहले गा क्रांतदर्शी। म्हणोनि आतां तेचि परियेसीं। सांगेन तुज ॥८८॥

कर्मणो ह्यपिबोद्धव्यं बोद्धव्यंच विकर्मणः। अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥१७॥

तरी कर्म म्हणजे स्वभावे। जेणें विश्वाकारु संभवे। तें सम्यक् आधीं जाणावें। लागे एथ ॥८९॥ मग वर्णाश्रमासि उचिता। जें विशेष कर्म विहिता। तेंही वोळखावें निश्चिता। उपयोगेंसीं ॥९०॥ पाठीं जें निषिद्ध म्हणिपे। तेंही बुझावें स्वरूपें। येतुलेंनि येथ कांहीं न गुंफे। आपैसेंचि ॥९१॥ एन्हवीं जग हें

कर्माधीन। ऐसी याची व्याप्ती गहना परि तें असो आइकें चिन्ह। प्राप्ताचें गा ॥९२॥

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः। स बुद्धिमान् मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥९८॥

जो सकळकर्मिं वर्ततां। देखे आपुली नैष्कर्म्यता। कर्मसंगें निराशता। फळाचिया ॥९३॥ आणि कर्तव्यतेलागीं। जया दुसरें नाहीं जगीं। ऐसिया नैष्कर्म्यता तरी चांगी। बोधला असे ॥९४॥ परि क्रियाकलापु आघवा। आचरतु दिसे बरवा। तरी तो इहीं चिन्हीं जाणावा। ज्ञानिया गा ॥९५॥ जैसा कां जळापाशीं उभा ठाके। तो जरी आपणपें जळामाजिं देखे। तरी निभ्रांत वोळखे। म्हणे मी वेगळा आहे ॥९६॥ अथवा नावे हन जो रिगे। तो थडियेचे रुख जातां वेगें। तेचि साचोकारें जो पाहों लागे। तंव रुख म्हणे अचळ ॥९७॥ तैसें सर्व कर्मिं असणें। तें फुडें मानूनि वायाणें। मग आपणपें जो जाणे। नैष्कर्म्यु ऐसा ॥९८॥ आणि उदोअस्ताचेनि प्रमाणें। जैसें न चलतां सूर्याचें चालणें। तैसें नैष्कर्म्यत्व जाणे। कर्मिंचि असतां ॥९९॥ तो मनुष्यासारखा तरी आवडे। परी मनुष्यत्व तया न घडे। जैसें जळीं जळामाजीं न बुडे। भानुबिंब ॥१००॥ तेणें न पाहतां विश्व देखिलें। न करितां सर्व केलें। न भोगितां भोगिलें। भोग्यजात ॥१०१॥ एकेचि ठायीं बैसला। परि सर्वत्र तोचि गेला। हें असो विश्व जाहला। आंगेंचि तो ॥१०२॥

यस्य सर्वे समारम्भाः कामसंकल्पवर्जिताः। ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः ॥१०९॥

जयां पुरुषाचां ठायीं। कर्माचा तरी खेदु नाहीं। परी फळापेक्षा कहीं। संचरेना ॥३॥ आणि हें कर्म मी करीन। अथवा आदरिलें सिद्धी नेईन। येणें संकल्पेंही जयाचें मन। विटाळेना ॥४॥ ज्ञानाग्नीचेनि मुखें। जेणें जाळिलीं कर्मे अशेखें। तो ब्रह्मचि मनुष्यवेखें। वोळख तूं ॥५॥

त्यक्त्वा कर्मफलासंगं नित्यतृप्तो निराश्रयः। कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित् करोति सः ॥२०॥

जो शरीरीं उदासु। फळभोगीं निरासु। नित्यता उल्हासु। होऊनि असे ॥६॥ जो संतोषाचां गाभारां। आत्मबोधाचिया वोगरा। पुरे न म्हणेचि धनुर्धरा। आरोगितां ॥७॥

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः। शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ॥२१॥

कैसी आर्थिकाधिक आवडी। घेत महासुखाची गोडी। सांडोनियां आशा कुरोंडी। अहंभावेसीं ॥८॥ म्हणोनि अवसरें जें जें पावे। कीं तेणेंचि तो सुखावे। जया आपुलें आणि परावें। दोन्हीं नाहीं ॥९॥ तो दिठी जें पाहे। तें आपणचि होऊनि जाये। आइके तें आहे। तोचि जाहाला ॥१०॥ चरणीं हन चाले। मुखें जें जें बोले। ऐसें चेष्टाजात तेतुलें। आपणचि जो ॥११॥ हें असो विश्व पाहीं। जयासि आपणपेंवांचूनि नाहीं। आतां कवण तें कर्म कायी। बाधी तयातें ॥१२॥

यदृच्छालाभसंतुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः। समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते ॥२२॥

हा मत्सर जेथ उपजे। तेतुलें नुरेचि जया दुजें। तो निर्मत्सरु काइ म्हणिजे। बोलवरी ॥१३॥ म्हणोनि सर्वापरी मुक्तु। तो सकर्मुचि कर्मरहितु। सगुण परि गुणातीतु। एथ भ्रांति नाहीं ॥१४॥

गतसंगस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः। यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ॥२३॥

तो देहसंगें तरी असे। परी चैतन्यासारिखा दिसे। पाहतां परब्रह्माचेनि कसें। चोखाळु भला ॥१५॥ ऐसाही परी कौतुकें। जरी कर्म करी यज्ञादिकें। तरी तियें लया जाती अशेखें। तयाचांचि ठायीं ॥१६॥ अकाळींचीं अभ्रें जैशीं। उर्मिवीण आकाशीं। हारपती आपैशीं। उदयलीं सांतीं ॥१७॥ तैशीं विधिविधान विहितें। जरी आचरे तो समस्तें। तरी तियें ऐक्यभावं ऐक्यातें। पावतीचि गा ॥१८॥

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्। ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥२४॥

जें हें हवन मी होता। कां झ्यें यज्ञीं हा भोक्ता। ऐसीया बुद्धीसि नाहीं भंगता। म्हणऊनियां ॥१९॥ जे इष्टयज्ञ यजावे। तें हविर्मंत्रादि आघवें। तो देखतसे आर्विनाशभावं। आत्मबुद्धि ॥१२०॥ म्हणऊनि ब्रह्म तेंचि कर्म। ऐसें बोधा आलें जया समा। तया कर्तव्य तें नैष्कर्म्य। धनुर्धरा ॥१२१॥ आतां आर्विवैककुमारत्वा मुकले। जयां विरक्तीचें पाणिग्राहण जाहलें। मग उपासन जिहीं आणिलें। योगाग्नीचें ॥१२२॥

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते। ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुहति ॥२५॥

जे यजनशील अहर्निशी। जिहीं आर्विद्या हविली मनेंसीं। गुरुवाक्यहुताशीं। हवन केलें ॥२३॥

तिहीं योगाग्नीकीं यजिजे। तो दैवयज्ञु म्हणिजे। जेणें आत्मसुख कामिजे। पंडुकुमरा ॥२४॥ दैवास्तव देहाचें पाळण। ऐसा निश्चयो परिपूर्ण। जो चिंतीना देहभरण। तो महायोगी जाण। दैवयोगें ॥२५॥ आतां अवधारीं सांगेन आणिक। जे ब्रह्माग्नी साग्निक। तयांतें यज्ञेंचि यज्ञु देखा उपासिजे ॥२६॥

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुहति। शब्दादीन् विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुहति ॥२६॥

एक संयमाग्नीहोत्री। ते युक्तित्रयाचां मंत्रीं। यजन करिती पवित्रीं। इंद्रियद्रव्यीं ॥२७॥ एकां वैराग्यरवि विवळे। तंव संयती विहार केले। तेथ अपावृत जाहले। इंद्रियानळ ॥२८॥ तिहीं विरक्तीची ज्वाळा घेतली। तंव विकारांचीं इंधनें पळिपलीं। तेथ आशाधूमें सांडिलीं। पांचही कुंडें ॥२९॥ मग वाक्यविधीचिया निरवडी। विषयआहुति उदंडी। हवन केलें कुंडीं। इंद्रियाग्नीचां ॥१३०॥

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे। आत्मसंयमयोगाग्नौ जुहति ज्ञानदीपिते ॥२७॥

एकीं ययापरी पार्था। दोषु क्षाळिले सर्वथा। आणिकीं हृदयारणीं मंथा। विवेकु केला ॥३१॥ तो उपशमें निहटिला। धैर्यें वरी दाटिला। गुरुवाक्यें काढिला। बळकटपणें ॥३२॥ ऐसें समरसें मंथन केलें। तेथ झडकरी काजा आलें। जे उज्जीवन जहालें। ज्ञानाग्नीचें ॥३३॥ पहिला ऋद्धिसिद्धीचा संभ्रमु। तो निवर्तोनि गेला धूमु। मग प्रगटला सूक्ष्मु। विस्फुलिंगु ॥३४॥ तया मनाचें मोकळें। तेंचि पेटवण घातलें। जें यमदमीं हळुवारलें। आइतें होतें ॥३५॥ तेणें सादुकपणें ज्वाळा समृद्धा। मग वासनांतराचिया समिधा। स्नेहेंसि नानाविधा। जाळिलिया ॥३६॥ तेथ सोहंमंत्रें दीक्षितीं।

इंद्रियकर्माचिया आहुती। तिये ज्ञानानळीं प्रदीप्तीं। दिधलिया ॥३७॥ पाठीं प्राणक्रियेचेनि सुवेनिशीं। पूर्णाहुती पडली हुताशीं। तेथ अवभृथ समरसीं। सहजें जाहलें ॥३८॥ मग आत्मबोधीचें सुखा जें संयमाग्नीचें हुतशेष। तोचि पुरोडाशु देखा। घेतला तिहीं ॥३९॥ एक ऐशिया इहीं यजनीं। मुक्त ते जाहले त्रिभुवनीं। या यज्ञक्रिया तरी आनानी। परि प्राप्य तें एक ॥१४०॥

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे। स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥२८॥

एक द्रव्ययज्ञु म्हणिपती। एक तपसामग्रिया निपजती। एक योगयागुही आहाती। जे सांगितले ॥४१॥ एकीं शब्दीं शब्दु यजिजे। तो वाग्यज्ञु म्हणिजे। ज्ञानें ज्ञेय गमिजे। तो ज्ञानयज्ञु ॥४२॥ हें अर्जुना सकळ कुवाडें। जे अनुष्ठितां आर्तिंसांकडें। परी जितेंद्रियासीचि घडे। योग्यतावशें ॥४३॥ ते प्रवीण तेथ भले। आणि योगसमृद्धी आथिले। म्हणोनि आपणपां तिहीं केलें। आत्महवन ॥४४॥

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे। प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥२९॥

मग अपानाग्नीच्यां मुखीं। प्राणद्रव्यें देखीं। हवन केलें एकीं। अभ्यासयोगें ॥४५॥ एक अपानु प्राणीं आर्पिती। एक दोहींतेंही निरुंधिती। ते प्राणायामी म्हणिपती। पंडुकुमरा ॥४६॥

अपरे नियताहाराः प्राणान् प्राणेषु जुह्वति। सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥३०॥

एक वज्रयोगक्रमें। सर्वाहारसंयमें। प्राणीं प्राणु संभ्रमें। हवन करिती ॥४७॥ ऐसें मोक्षकाम

सकळ। समस्त हे यजनशीळ। जिहीं यज्ञद्वारां मनोमळ। क्षाळण केले ॥४८॥ जया आर्विद्याजात जाळितां। जें उरलें निजस्वभावतां। जेथ आग्नि आणि होता। उरेचिना ॥४९॥ जेथ यजितयाचा कामु पुरे। यज्ञीचें विधान सरे। मागुतें जेथूनि वोसरें। क्रियाजात ॥१५०॥ विचार जेथ न रिगे। हेतु जेथ न निगे। जें द्वैतदोषसंगें। सिंपेचिना ॥५१॥

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्। नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥३१॥

ऐसें अनादिसिद्ध चोखटा। जें ज्ञान यज्ञावशिष्ट। तें सेविती ब्रह्मनिष्ट। ब्रह्माहंमंत्रें ॥५२॥ ऐसें शेषामृतें धाले। कीं अमर्त्यभावा आले। म्हणोनि ब्रह्म ते जहाले। अनायासें ॥५३॥ येरां विरक्ति माळ न घालीचि। जयां संयमाग्नीची सेवा न घडेचि। जे योगयागु न करितीचि। जन्मले सांते ॥५४॥ जयां ऐहिक धड नाहीं। तयांचें परत्र पुससी काई। म्हणोनि सांगों कां वांई। पंडुकुमरा ॥५५॥

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे। कर्मजान् विद्धि तान् सर्वानिवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ॥३२॥

ऐसें बहुतीं परी अनेग। जे सांगितले तुज कां याग। ते विस्तारुनि वेदेंचि चांग। म्हणितले आहाती ॥५६॥ परि तेणें विस्तारें काय करावें। हेंचि कर्मसिद्ध जाणावें। येतुलेनि कर्मबंधु स्वभावे। पावेल ना ॥५७॥

श्रेयान् द्रव्यमयाद् यज्ञाज् ज्ञानयज्ञः परंतप। सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ॥३३॥

अर्जुना वेदु जयांचें मूळ। जे क्रियाविशेषें स्थूळ। जयां नव्हाळियेचें फळ। स्वर्गसुख ॥५८॥ ते

द्रव्यादियागु कीर होती। परी ज्ञानयज्ञाची सरी न पवती। जैशी तारातेजसंपत्ती। दिनकरापाशीं ॥५९॥ देखें परमात्मसुखनिधान। साधावया योगीजना जें न विसंबिती अंजना उन्मेषनेत्रीं ॥१६०॥ जें धांवतया कर्माची लाणी। नैष्कर्म्यबोधाची खाणी। जें भुकेलिया धणी। साधनाची ॥६१॥ जेथ प्रवृत्ति पांगुळ जाहली। तर्काची दिठी गेली। जेणें इंद्रियें विसरलीं। विषयसंगु ॥६२॥ मनाचें मनपण गेलें। जेथ बोलाचें बोलपण ठेलें। जयामाजि सांपडलें। ज्ञेय दिसे ॥६३॥ जेथ वैराग्याचा पांगु फिटे। विवेकाचाही सोसु तुटे। जेथ न पाहतां सहज भेटे। आपणपें ॥६४॥

तद् विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया। उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥३४॥

तें ज्ञान पें गा बरवें। जरी मनीं आथि आणावें। तरी संतां यां भजावें। सर्वस्वेंशीं ॥६५॥ जे ज्ञानाचा कुरुठा। तेथ सेवा हा दारवंटा। तो स्वाधीन करी सुभटा। वोळगोनी ॥६६॥ तरी तनुमनुजीवें। चरणासीं लागावें। आणि अगर्वता करावें। दास्य सकळ ॥६७॥ मग अपेक्षित जें आपुलें। तेंही सांगती पुसिलें। जेणें अंतःकरण बोधलें। संकल्पा नये ॥६८॥

यज् ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पांडवा। येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ॥३५॥

जयाचेनि वाक्यउजिवडें। जाहलें चित्त निधडें। ब्रह्माचेनि पाडें। निःशंकु होय ॥६९॥ ते वेळीं आपणपेया सहितें। इयें अशेषेंही भूतें। माझां स्वरूपीं अखंडितें। देखसी तूं ॥१७०॥ ऐसें ज्ञानप्रकाशें

पाहेला तें मोहांधकारु जाईला। जें गुरुकृपा होईला। पार्था गा ॥७१॥

आर्पिं चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः। सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ॥३६॥

जरी कल्मषांचा आगरु। तूं भ्रांतीचा सागरु। व्यामोहाचा डोंगरु। होऊनी अससी ॥७२॥ तन्ही ज्ञानशक्तिचेनि पाडें। हें आघवेंचि गा थोकडें। ऐसें सामर्थ्य असे चोखडें। ज्ञानीं इये ॥७३॥ देखें विश्वभ्रमाऐसा। जो अमूर्ताचा कडवसा। तो जयाचिया प्रकाशा। पुरेचिना ॥७४॥ तया कायसें हें मनोमळा। हें बोलतांचि आर्ति किडाळा। नाहीं येणें पाडें ढिसाळा। दुजें जर्गी ॥७५॥

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन। ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा ॥३७॥

सांगें भुवनत्रयाची काजळी। जे गगनामाजि उधवली। तिये प्रळयींचे वाहटुळी। काय अभ्र पुरे ॥७६॥ कीं पवनाचेनि कोपें। पाणियेंचि जो पळिपे। तो प्रळयानळु दडपे। तृणें काष्ठें काई ॥७७॥

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते। तत् स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ॥३८॥

म्हणोनि असो हें न घडे। तें विचारितांचि असंगडें। पुढती ज्ञानाचेनि पाडें। पवित्र न दिसे ॥७८॥ एथ ज्ञान हें उत्तम होये। आणिकही एक तैसें कें आहे। जैसें चैतन्य कां नोहे। दुसरें गा ॥७९॥ या महातेजाचेनि कसें। जरी चोखाळु प्रतिबिंब दिसे। कां गिंवसिलें गिंवसे। आकाश हें ॥१८०॥ नातरी पृथ्वीचेनि पाडें। कांटाळें जरी जोडे। तरी उपमा ज्ञानीं घडे। पंडुकुमरा ॥८१॥ म्हणूनि बहुतीं परी पाहतां। पुढतपुढतीं निर्धारितां। हे ज्ञानाची पवित्रता। ज्ञानींचि आथि ॥८२॥ जैसी अमृताची चवी

निवडिजे। तरी अमृताचिसारिखी म्हणिजे। तैसें ज्ञान हें उपमिजे। ज्ञानेसींचि ॥८३॥ आतां यावरी जें बोलणें। तें वायांचि वेळु फेडणें। तंव सांचचि जी हें पार्थु म्हणे। जें बोलत असां ॥८४॥ परि तेंचि ज्ञान केवीं जाणावें। ऐसें अर्जुनें जंव पुसावें। तंव तें मनोगत देवें। जाणितलें ॥८५॥ मग म्हणतसे किरीटी। आतां चित्त देई इये गोठी। सांगेन ज्ञानाचिये भेटी। उपाय तुज ॥८६॥

श्रद्धावान् लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः। ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥३९॥

तरी आत्मसुखाचिया गोडिया। विटे जो कां सकळ विषयां। जयाचां ठायीं इंद्रियां। मानु नाही ॥८७॥ जो मनासी चाड न सांगे। तो प्रकृतीचें केलें नेघे। जो श्रद्धेचेनि संभोगें। सुखिया जाहला ॥८८॥ तयातेंचि गिंवसिता। हें ज्ञान पावे निश्चिता। जयामाजि अचुंबिता। शांति असे ॥८९॥ तें ज्ञान हृदयीं प्रतिष्ठे। आणि शांतीचा अंकुर फुटे। मग विस्तार बहु प्रकटे। आत्मबोधाचा ॥९०॥ मग जेउती वास पाहिजे। तेउति शांतीचि देखिजे। तेथ अपारा पारु नेणिजे। निर्धारितां ॥९१॥ ऐसा हा उत्तरोत्तरा ज्ञानबीजाचा विस्तार। सांगतां असे अपार। परि असो आतां ॥९२॥

अज्ञश्चाश्रद्धानश्च संशयात्मा विनश्यति। नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥४०॥

एकें जया प्राणियाचां ठायीं। इया ज्ञानाची आवडी नाही। तयाचें जियालें म्हणों काई वरी मरण चांग ॥९३॥ शून्य जैसें गृह। कां चैतन्येवीण देह। तैसें जीवित तें संमोह। ज्ञानहीना ॥९४॥ अथवा

ज्ञान कीर आपु नोहे। परी ते चाड एकी जरी वाहे। तरी तेथ जिव्हाळा कांहीं आहे। प्राप्तीचा पै ॥९५॥ वांचूनि ज्ञानाची गोठी कायसी। परि ते आस्थाही न धरी मानसीं। तरी तो संशयरूप हुताशीं। पडिला जाण ॥९६॥ जे अमृतही परि नावडे। ऐसें सावियाचि आरोचकु जें पडे। तें मरण आलें असे फुडें। जाणों ये कीं ॥९७॥ तैसा विषयसुखें रंजे। जो ज्ञानेसींचि माजे। तो संशयें अंगीकारिजे। एथ भ्रांति नाही ॥९८॥ मग संशयीं जरी पडला। तरी निभ्रांत जाणें नासला। तो ऐहिकपरत्रा मुकला। सुखासि गा ॥९९॥ जया काळज्वरु आंगीं बाणे। तो शीतोष्ण जैशीं नेणे। आगी आणि चांदिणें। सरिसेंचि मानी ॥१००॥ तैसें साच आणि लटिकें। विरुद्ध आणि निकें। संशयीं तो नोळखे। हिताहित ॥१॥ हा रात्रिदिवसु पाहीं। जैसा जात्यंधा ठाउवा नाही। तैसें संशयीं असतां कांहीं। मना नये ॥२॥ म्हणऊनि संशयाहूनि थोर। आणिक नाही पाप घोर। हा विनाशाची वागुर। प्राणियासी ॥३॥ येणें कारणें तुवां त्यजावा। आधीं हाचि एकु जिणावा। जो ज्ञानाचिया अभावा। माजि असे ॥४॥ जें अज्ञानाचें गडद पडे। तें हा बहुवस मनीं वाढे। म्हणोनि सर्वथा मागु मोडे। विश्वासाचा ॥५॥ हृदयीं हाचि न समाये। बुद्धीतें गिंवसूनि ठाये। तेथ संशयात्मक होये। लोकत्रय ॥६॥

योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम्। आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनंजय ॥४१॥

ऐसा जरी थोरावे। तरी उपायें एकें आंगवे। जरी हातीं होय बरवें। ज्ञानखड्ग ॥७॥ तरी तेणें ज्ञानशस्त्रें तिखटें। निखळु हा निवटे। मग निःशेष खता फिटे। मानसींचा ॥८॥

तस्मादज्ञानसंभूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः। छित्त्वेन संशयं योगमातिष्ठोतिष्ठ भारत ॥४२॥

याकारणं पार्था। उठीं वेगीं वरौता। नाशु करोनि हृदयस्था। संशयासी ॥९॥ ऐसे सर्वज्ञानाचा
बापु। जो कृष्ण ज्ञानदीपु। तो म्हणतसे सकृपु। ऐकें राया ॥२१०॥ तंव या पूर्वापर बोलाचा।
विचारुनि कुमरु पंडूचा। कैसा प्रश्नु हन अवसरींचा। करितां होईल ॥११॥ ते कथेची संगति।
भावाची संपत्ति। रसाची उन्नति। म्हणिपेल पुढां ॥१२॥ जयाचिया बरवेपणीं। कीजे आठां रसांची
ओवाळणी। जो सज्जनाचिये आयणी। विसांवा जर्गी ॥१३॥ तो शांतुचि आर्भिनवेल। ते परियसा
मन्हाटे बोला। जे समुद्राहूनि खोला। अर्थभरित ॥१४॥ जैसैं बिंब तरी बचकें एवढें। परि प्रकाशा
त्रैलोक्य थोकडें। शब्दाची व्याप्ति तेणें पाडें। अनुभवावी ॥१५॥ नातरी कामितयाचिया इच्छा। फळे
कल्पवृक्षु जैसा। बोलु व्यापकु होय तैसा। तरी अवधान द्यावें ॥१६॥ हें असो काय म्हणावें। सर्वज्ञ
जाणती स्वभावे। तरी निकें चित्त द्यावें। हे विनंति माझी ॥१७॥ जेथ साहित्य आणि शांति। हे रेखा
दिसे बोलती। जैसी लावण्यगुणकुळवती। आणि पतिव्रता ॥१८॥ आधींचि साखर आवडे। आणि
तेचि जरी ओखदीं जोडे। तरी सेवावी ना कां कोडें। नावा नावा ॥१९॥ सहजें मलयानिलु मंद सुगंधु।
तया अमृताचा होय स्वादु। आणि तेथेंचि जोडे नादु। जरी दैवगत्या ॥२०॥ तरी स्पर्शें सर्वांग
निववी। स्वादें जिव्हेतें नाचवी। तेवींचि कानाकरवीं। म्हणवी बापु माझा ॥२१॥ तैसैं कथेचें इये

एकणें। एक श्रवणासि होय पारणें। आणि संसारदुःख मूळवणें। विकृतीविणें ॥२२॥ जरी मंत्रेंचि वैरी
मरे। तरी वायांचि कां बांधावी कटारें। रोग जाय दुधें साखरें। तरी निंब कां पियावा ॥२३॥ तैसा
मनाचा मारु न करितां। आणि इंद्रियां दुःख न देतां। एथ मोक्षु असे आयता। श्रवणाचिमाजी ॥२४॥
म्हणोनि आथिलिया आराणुका। गीतार्थु हा निका। ज्ञानदेवो म्हणे आइका। निवृत्तिदासु ॥२५॥
इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानसंन्यासयोगो नाम चतुर्थोऽध्यायः।

(श्लोक ४२; ओव्या २२५)

ॐ श्रीसच्चिदानन्दार्पणमस्तु।

॥श्री॥

॥ज्ञानेश्वरी॥

अध्याय पांचवा

अर्जुन उवाच : संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि।

यच् श्रेय एतयोरेकं तन् मे ब्रूहि सुनिश्चितम्॥१॥

मग पार्थु श्रीकृष्णातें म्हणे। हां हो हें कैसें तुमचें बोलणें। एक होय तरी अंतःकरणें। विचारुं ये
॥१॥ मागां सकळ कर्माचा संन्यासु। तुम्हींचि निरोपिला होता बहुवसु। तरी कर्मयोगीं केवीं आर्तिरसु।
पोखीतसां पुढती ॥२॥ ऐसें द्वयर्थ हें बोलतां। आम्हां नेणतयांचिया चित्ता। आपुलिये चाडे अनंता।
उमजु नोहे ॥३॥ ऐकें एकसारातें बोधिजे। तरी एकनिष्ठचि बोलिजे। हें आणिकीं काय सांगिजे।
तुम्हांप्रति ॥४॥ तरी याचिलागीं तुमतें। म्यां राउळासि विनविले होतें। जे हा परमार्थु ध्वनितें। न
बोलावा ॥५॥ परी मागील असो देवा। आतां प्रस्तुतीं उकलु देखावा। सांगें दोहींमाजि बरवा। मार्गु

कवण ॥६॥ जो परिणामींचा निर्वाळा। अचुंबितु ये फळा। आणि अनुष्ठितां प्रांजळा। सावियाचि ॥७॥
जैसें निद्रेचें सुख न मोडे। आणि मार्गु तरी बहुसाल सांडे। तैसें सोकासना सांगडें। सोहपें होय ॥८॥
येणें अर्जुनाचेनि बोलें। देवो मनीं रिझले। मग होईल ऐकें म्हणितलें। संतोषोनियां ॥९॥ देखां
कामधेनुऐसी माये। सदैवा जया होये। तो चंद्रुही परी लाहे। खेळावया ॥१०॥ पाहें पा शंभूची
प्रसन्नता। तया उपमन्यूचिया आर्ता। काय क्षीराब्धि दूधभाता। देइजेचिना ॥११॥ तैसा औदार्याचा
कुरुठा। कृष्ण आपु जाहलिया सुभटा। कां सर्व सुखांचा वसौटा। तोचि नोहावा ॥१२॥ एथ चमत्कारु
कायसा। गोसावी लक्ष्मीकांताऐसा। आतां आपुलिया सवेसा। मागावा कीं ॥१३॥ म्हणोनि अर्जुनें
म्हणितलें। तें हांसोनि येरें दिधलें। तेंचि सांगेन बोलिलें। काय कृष्णें ॥१४॥

श्रीभगवानुवाच : संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ।

तयोस्तु कर्मसंन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते ॥२॥

तो म्हणे गा कुंतीसुता। हे संन्यासयोग विचारितां। मोक्षकर तत्त्वता। दोनीहि होती ॥१५॥ तरी
जाणांनेणां सकळां। हा कर्मयोगु कीर प्रांजळा। जैसी नाव स्त्रियां बाळां। तोयतरणीं ॥१६॥ तैसें
सारासार पाहिजे। तरी सोहपा हाचि देखिजे। येणें संन्यासफळ लाहिजे। अनायासें ॥१७॥ आता
याचिलागीं सांगेन। तुज संन्यासियाचें चिन्ह। मग सहजें हे आर्भिन्ना। जाणसी तूं ॥१८॥

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति। निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बंधात् प्रमुच्यते ॥३॥

तरी गेलियाची से न करी। न पवतां चाड न धरी। जो सुनिश्चळु अंतरीं। मेरु जैसा ॥१९॥ आणि
मी माझें ऐसी आठवण। विसरलें जयाचें अंतःकरण। पार्था तो संन्यासी जाण। निरंतर ॥२०॥ जो
मनें ऐसा जाहला। संगीं तोचि सांडिला। म्हणोनि सुखें सुख पावला। अखंडित ॥२१॥ आतां
गृहादिक आघवें। तें कांहीं नलगे त्यजावें। जें घेतें जाहलें स्वभावें। निःसंगु म्हणऊनि ॥२२॥ देखें
आग्नि विझोनि जाये। मग जे राखोंडी केवळु होये। तें ते कापुसें गिंवसूं ये। जियापरी ॥२३॥ तैसा
असतेनि उपाधी। नाकळिजे तो कर्मबंधीं। जयाचिये बुद्धी। संकल्पु नाहीं ॥२४॥ म्हणोनि कल्पना
जें सांडे। तेंचि गा संन्यासु घडे। या कारणे दोनी सांगडे। संन्यासयोगु ॥२५॥

सांख्ययोगौ पृथग् बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः। एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ॥४॥

एहवीं तरी पार्था। जे मूर्ख होती सर्वथा। ते सांख्यकर्मसंस्था। जाणती केवीं ॥२६॥ सहजें ते
अज्ञान। म्हणोनि म्हणती हे भिन्न। एहवी दीपाप्रति काई आनान। प्रकाशु आहाती ॥२७॥ पै
सम्यक् एके अनुभवे। जिहीं देखिलें तत्त्व आघवें। ते दोन्हींतेंही ऐक्यभावे। मानिती गा ॥२८॥

यत् सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद् योगैरपि गम्यते। एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ॥५॥

आणि सांख्यीं जें पाविजे। तेंचि योगीं गमिजे। म्हणोनि ऐक्यता दोहींतें सहजें। इयापरी ॥२९॥
देखें आकाशा आणि अवकाशा। भेदु नाहीं जैसा। तैसें ऐक्य योगसंन्यासा। वोळखे जो ॥३०॥

तयासींचि जगीं पाहलें। आपणपें तेणेंचि देखिलें। जया सांख्ययोग जाणवले। भेदेविण ॥३१॥

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमासुमयोगतः। योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म न चिरेणाधिगच्छति ॥६॥

जो युक्तिपंथे पार्था। चढे मोक्षपर्वता। तो महासुखाचा निमथा। वहिला पावे ॥३२॥ येरा
योगस्थिति जया सांडे। तो वायांचि गा हव्यासीं पडे। परि प्राप्ति कहीं न घडे। संन्यासाची ॥३३॥

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः। सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥७॥

जेणें भ्रांतीपासूनि हिरतलें। गुरुवाक्यें मन धुतलें। मग आत्मस्वरूपीं घातलें। हारौनिया ॥३४॥
जैसें समुद्रीं लवण न पडे। तंव वेगळें अल्प आवडे। मग होय सिंधूचि एवढें। मिळे तेव्हां ॥३५॥ तैसें
संकल्पोनि काढिलें। जयाचें मनचि चैतन्य जाहलें। तेणें एकदेशियें परी व्यापिलें। लोकत्रय ॥३६॥
आतां कर्ता कर्म करावें। हें खुंटलें तया स्वभावें। आणि करी जन्हीं आघवें। तन्हीं अकर्ता तो ॥३७॥

नैव किंचित् करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्॥

पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन्श्नन् गच्छन् स्वपन् श्वसन् ॥८॥

प्रलपन् विसृजन् गृह्णन्निमिषन् निमिषन्नपि। इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन् ॥९॥

जे पार्था तया देहीं। मी ऐसा आठऊ नाहीं। तरी कर्तृत्व कैचें काई। उरे सांगें ॥३८॥ ऐसे
तनुत्यागेंवीण। अमूर्ताचे गुण। दिसती संपूर्ण। योगयुक्ता ॥३९॥ एहवीं आणिकांचिये परी। तोही एक
शरीरी। अशेषींही व्यापारी। वर्ततु दिसे ॥४०॥ तोही नेत्री पाहे। श्रवणीं ऐकतु आहे। परि तेथींचा

सर्वथा नोहे। नवल देखें ॥४१॥ स्पर्शासि तरी जाणे। परिमळु सेवी घ्राणे। अवसरोचित बोलणे।
तयाहि आथी ॥४२॥ आहारातें स्वीकारी। त्यजावें ते परिहरी। निद्रेचिया अवसरीं। निदिजे सुखें
॥४३॥ आपुलेनि इच्छावशें। तोहि गा चालतु दिसे। पै सकळ कर्म ऐसें। राहाटे कीर ॥४४॥ हें सांगें
काई एकैका देखें श्वासोश्वासादिका। आणि निमिषोन्निमिषा आदिकरुनि ॥४५॥ पार्था तयाचां ठायीं।
हें आघवेंचि आथि पाही। परी तो कर्ता नव्हे कांहीं। प्रतीतिबळें ॥४६॥ जें भ्रांतिसेजे सुतला। तें
स्वप्नसुखें भुतला। मग तो ज्ञानोदयीं चेइला। म्हणोनिया ॥४७॥

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः। लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥१०॥

आतां आर्द्धिष्ठानसंगती। अशेषाही इंद्रियवृत्ती। आपुलालिया अर्थी। वर्तत आहाती ॥४८॥
दीपाचेनि प्रकाशें। गृहींचे व्यापार जैसें। देहीं कर्मजात तैसें। योगयुक्ता ॥४९॥ तो कर्म करी सकळें।
परी कर्मबंधा नाकळे। जैसें न सिंघे जळीं जळें। पद्मपत्र ॥५०॥

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि। योगिनः कर्म कुर्वन्ति संगं त्यक्त्वात्मशुद्धये ॥११॥

देखें बुद्धीची भाष नेणिजे। मनाचा अंकुर नुदैजे। ऐसा व्यापारु तो बोलिजे। शारीरु गा ॥५१॥
हेंच मराठें परियेशीं। तरी बाळकाची चेष्टा जैशी। योगिये कर्म करिती तैशीं। केवळा तनू ॥५२॥ मग
पांचभौतिक संचलें। जेव्हां शरीर असे निदेलें। तेथ मनचि राहाटे एकलें। स्वप्नीं जेवीं ॥५३॥ नवल

एकें धनुर्धरा। कैसा वासनेचा संसारा। देहा होऊं नेदी उजगरा। परी सुखदुःखें भोगी ॥५४॥
इंद्रियांचां गांवीं नेणिजे। ऐसा व्यापारु जो निपजे। तो केवळ गा म्हणिजे। मानसाचा ॥५५॥ योगिये
तोहि करिती। परी कर्म तेणें न बंधिजती। जे सांडिली आहे संगती। अहंभावाची ॥५६॥ आतां
जाहालिया भ्रमहता। जैसें पिशाचाचें चित्त। मग इंद्रियांचें चेष्टिता विकळु दिसे ॥५७॥ स्वरूप तरी
देखे। आळविलें आइके। शब्दु बोले मुखें। परी ज्ञान नाही ॥५८॥ हें असो काजेंविण। जें जें कांहीं
कारण। तें केवळ कर्म जाण। इंद्रियांचें ॥५९॥ मग सर्वत्र जें जाणतें। तें बुद्धीचें कर्म निरुतें। वोळख
अर्जुनातें। म्हणे हरी ॥६०॥ ते बुद्धि धुरें करुनी। कर्म करिती चित्त देउनी। परी ते नैष्कर्म्यापासुनी।
मुक्त दिसती ॥६१॥ जे बुद्धीचिये ठावूनि देहीं। तयां अहंकाराची सेचि नाही। म्हणोनि कर्मचि
करितां पाहीं। चोखाळले ॥६२॥ अगा करितेनवीण कर्म। तेंचि तें निष्कर्म। हें जाणती सवर्म।
गुरुगम्य जें ॥६३॥ आतां शांतरसाचें भरितें। सांडीत आहे पात्रातें। जे बोलणें बोलापरौतें। बोलवलें
॥६४॥ एथ इंद्रियांचा पांगु। जया फिटला आहे चांगु। तयासीचि आथि लागु। परिसावया ॥६५॥ हा
असो आर्तिप्रसंगु। न संडी पां कथालागु। होईल श्लोकसंगतिभंगु। म्हणऊनियां ॥६६॥ जें मना
आकळितां कुवाडें। घाघुसितां बुद्धी नातुडे। तें दैवाचेनि सुरवाडें। सांगवलें तुज ॥६७॥ जें शब्दातीत
स्वभावे। तें बोलींचि जरी फावे। तरी आणिकें काय करावें। सागें कथा ॥६८॥ हा आर्तिविशेषु
श्रोतयांचा। जाणोनि दास निवृत्तीचा। म्हणे संवादु तया दोघांचा। परिसोनि परिसा ॥६९॥

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्। अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते ॥१२॥

मग कृष्ण म्हणे पार्थातें। आतां प्राप्ताचें चिन्ह पुरतें। सांगेन तुज निरुतें। चित्त देई ॥७०॥ तरी
आत्मयोगें आथिला। जो कर्मफळांशीं विटला। तो घर रिघोनि वरिला। शांती जर्गी ॥७१॥ येरु
कर्मबंधें किरीटी। आर्भिलाषाचिया गांठी। कळासला खुंटीं। फळभोगाचां ॥७२॥

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी। नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन् न कारयन् ॥१३॥

जैसा फळाचिये हावें। ऐसें कर्म करी आघवें। मग न कीजेचि येणें भावें। उपेक्षी जो ॥७३॥ तो
जयाकडे वास पाहे। तेउती सुखाची सृष्टि होये। तो म्हणे तेथ राहे। महाबोधु ॥७४॥ नवद्वारें देहीं।
तो असतुचि परि नाहीं। करितुचि न करी कांहीं। फलत्यागी ॥७५॥

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः। न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥१४॥

जैसा कां सर्वेश्वरु। पाहिजे तंव निर्व्यापारु। परि तोचि रची विस्तारु। त्रिभुवनाचा ॥७६॥ आणि
कर्ता ऐसें म्हणिपे। तरी कवणे कर्मीं न शिंपे। जे हातुपावो न लिंपे। उदास वृत्तीचा ॥७७॥ योगनिद्रा
तरी न मोडे। अकर्तेपणा सळु न पडे। परी महाभूतांचें दळवाडें। उभारी भलें ॥७८॥ जगाचां जीवीं
आहे। परी कवणाचा कहीं नोहे। जगचि हें होय जाये। तो शुद्धीही नेणे ॥७९॥

नादत्ते कस्यचित् पापं न चैव सुकृतं विभुः। अज्ञानेनाऽवृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥१५॥

पापपुण्यें अशेषें। पासींचि असतु न देखे। आणि साक्षीही होऊं न ठके। येरी गोठी कायसी
॥८०॥ पै मूर्तीचेनि मेळें। तो मूर्तचि होऊनि खेळे। परि अमूर्तपण न मैळे। दादुलयाचें ॥८१॥ तो
सृजी पाळी संहारी। ऐसें बोलती जें चराचरीं। तें अज्ञान गा अवधारीं। पंडुकुमरा ॥८२॥

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः। तेषामादित्यवत् ज्ञानं प्रकाशयति तत् परम् ॥१६॥

तें अज्ञान जें समूळ तुटे। तें भ्रांतीचें मसैरें फिटे। मग अकर्तृत्व प्रगटे। ईश्वराचें ॥८३॥ एथ ईश्वरु
एकु अकर्ता। ऐसें मानलें जरी चित्ता। तरी तोचि मी हें स्वभावता। आदीचि आहे ॥८४॥ ऐसेनि विवेकें
उदो चित्तीं। तयासि भेदु केंचा त्रिजगतीं। देखें आपुलिया प्रतीती। जगचि मुक्त ॥८५॥ जैशी
पूर्वदिशेचां राउळीं। उदयाची सूर्ये दिवाळी। कीं येरींहि दिशां तियेचि काळीं। काळिमा नाहीं ॥८६॥

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः। गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥१७॥

बुद्धिनिश्चयें आत्मज्ञान। ब्रह्मरूप भावी आपणा आपण। ब्रह्मनिष्ठा राखे पूर्ण। तत्परायण अहर्निशीं
॥८७॥ ऐसें व्यापक ज्ञान भलें। जयांचिया हृदयातें गिंवसित आलें। तयांचि समतादृष्टि बोलें। विशेषूं
काई ॥८८॥ एक आपणपेंचि पां जैसें। ते देखती विश्व तैसें। हें बोलणें कायसें। नवलु एथ ॥८९॥ परी
दैव जैसें कवतिकें। कहींचि दैन्य न देखे। कां विवेकु हा नोळखे। भ्रांतीतें जेवीं ॥९०॥ नातरी
अंधकाराची वानी। जैसा सूर्यो न देखे स्वप्नीं। अमृत नायके कानीं। मृत्युकथा ॥९१॥ हें असो संतापु
कैसा। चंद्रु न स्मरे जैसा। भूतीं भेदु नेणती तैसा। ज्ञानिये ते ॥९२॥

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि। शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥१८॥

मग हा मशकु हा गजु। कीं हा श्वपचु हा द्विजु। पैल इतरु हा आत्मजु। हें उरेल कें ॥१३॥ ना तरी हे धेनु हें श्वान। एक गुरु एक हीन। हें असो कैचें स्वप्न। जागतया ॥१४॥ एथ भेदु तरी कीं देखावा। जरी अहंभाव उरला होआवा। तो आधींचि नाहीं आघवा। आतां विषम काई ॥१५॥

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः। निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः ॥१९॥

म्हणोनि सर्वत्र सदा समा। तें आपणचि अद्वय ब्रह्म। हें संपूर्ण जाणे वर्म। समदृष्टीचें ॥१६॥ जिहीं विषयसंगु न सांडितां। इंद्रियांतें न दंडितां। परि भोगिली निसंगता। कामेंविण ॥१७॥ जिहीं लोकांचेनि आधारें। लौकिकेचि व्यापारें। पण सांडिलें निदसुरें। लौकिकु हें ॥१८॥ जैसा जनामाजि खेचरु। असतुचि जना नोहे गोचरु। तैसा शरीरी तो परि संसारु। नोळखे तयांतें ॥१९॥ हें असो पवनाचेनि मेळें। जैसें जळींचि जळ लोळे। तें आणिकें म्हणती वेगळे। कल्लोळ हे ॥१००॥ तैसें नामरूप तयाचें। एन्हवीं ब्रह्मचि तो साचें। मन साम्या आलें जयाचें। सर्वत्र गा ॥१॥ ऐसेनि समदृष्टी जो होये। तया पुरुषा लक्षणही आहे। अर्जुना संक्षेपें सांगेन पाहें। अच्युत म्हणे ॥२॥

न प्रहृष्येत् प्रियं प्राप्य नोद्विजेत् प्राप्य चाप्रियम्। स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद् ब्रह्मणि स्थितः ॥२०॥

तरी मृगजळाचेनि पूरें। जैसें न लोटिजे कां गिरिवरें। तैसा शुभाशुभीं न विकरे। पातलां जो ॥३॥

तोचि तो निरुता। समदृष्टि तत्त्वता। हरि म्हणे पंडूसुता। तोचि ब्रह्म ॥४॥

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत् सुखम्। स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते ॥२१॥

जया आपणपें सांडूनि कहीं। इंद्रियग्रामावरी येणें नाहीं। तो विषय न सेवी हें काई। विचित्र येथ ॥५॥ सहजें स्वसुखाचेनि अपारें। सुरवाडें अंतरें। रचिला म्हणऊनि बाहिरें। पाऊल न घली ॥६॥ सांगें कुमुदळाचेनि ताटें। जो जेविला चंद्रकिरणें चोखटें। तो चकोरु काई वाळुवटें। चुंबितु आहे ॥७॥ तैसें आत्मसुख उपाडलें। जयासि आपणपांचि फावलें। तया विषय सहज सांडवले। सांगों काई ॥८॥ एन्हवीं तरी कौतुकें। विचारुनि पाहें पां निकें। या विषयांचेनि सुखें। झकवती कवण ॥९॥

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते। आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥२२॥

जिहीं आपणपें नाहीं देखिलें। तेचि इहीं इंद्रियार्थी रंजलें। जैसें रंक कां आळुकैलें। तुषांतें सेवी ॥११०॥ नातरी मृगें तृषापीडितें। संभ्रमें विसरोनि जळांतें। मग तोयबुद्धी बरडीतें। ठाकूनि येती ॥१११॥ तैसें आपणपें नाहीं दिटे। जयातें स्वसुखाचे सदा खराटे। तयासीचि विषय हे गोमटे। आवडती ॥११२॥ एन्हवीं विषयीं काइ सुख आहे। हें बोलणेंचि सारिखें नोहे। तरी विद्युत्स्फुरणें कां न पाहे। जगामार्जी ॥११३॥ सांगें वातवर्षआतपु धरे। ऐसें अभ्रच्छायाचि जरी सरे। तरी त्रिमाळिकें धवळारें। करावीं कां ॥११४॥ म्हणोनि विषयसुख जें बोलिजे। तें नेणतां गा वायां जल्पिजे। जैसें महुर कां म्हणिजे। विषकंदातें ॥११५॥ नातरी भौमा नाम मंगळु। रोहिणीतें म्हणती जळु। तैसा सुखप्रवादु

बरळु। विषयिकु हा ॥१६॥ हे असो आघवी बोली। सांग पां सर्पफणीची साउली। ते शीतल होईल
 केतुली। मूषकासी ॥१७॥ जैसा आमिषकवळु पांडवा। मीनु न सेवी तंवचि बरवा। तैसा विषयसंगु
 आघवा। निभ्रांत जाणें ॥१८॥ हें विरक्तांचिये दिठी। जें न्याहाळिजे किरीटी। तें पांडुरोगाचिये पुष्टी।
 सारिखें दिसे ॥१९॥ म्हणोनि विषयभोगीं जें सुख। तें साद्यंतचि जाण दुःख। परि काय करिती मूर्ख।
 न सेवितां न सरे ॥२०॥ ते अंतर नेणती बापुडे। म्हणोनि अगत्य सेवणें घडे। सांगें पूयपंकींचे किडे।
 काय चिळसी घेती ॥२१॥ तयां दुःख्यां दुःखचि जिव्हारा। ते विषयकर्दमींचे दर्दुरा। ते भोगजळातें
 जलचरा। सांडिती केवीं ॥२२॥ आणि दुःखयोनि जिया आहाती। तिया निरर्थका तरी नव्हती। जरी
 विषयांवरी विरक्ती। धरिती जीव ॥२३॥ नातरी गर्भवासादि संकटा। कां जन्ममरणींचे कष्ट। हे
 विसांवेनवीण वाटा। वाहावी कवणें ॥२४॥ जरी विषयीं विषयो सांडिजेला। तरी महादोषीं कें वसिजेला।
 आणि संसारु हा शब्दु नव्हेला। लटिका जर्गी ॥२५॥ म्हणोनि आर्विद्याजात नाथिलें। ते तिहींचि
 साच दाविलें। जिहीं सुखबुद्धी घेतलें। विषयदुःख ॥२६॥ या कारणें गा सुभटा। हा विचारितां विषय
 वोखटा। तूं झणें कहीं या वाटा। विसरोनि जाशी ॥२७॥ पै यातें विरक्त पुरुष। त्यजिती कां जैसें
 विषा निराशां तयां दुःखा दाविलें नावडे ॥२८॥

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक् शरीरविमोक्षणात्। कामक्रोधोद्वेगं स युक्तस सुखी नरः ॥२३॥

ज्ञानियाचां हन ठायीं। यांची मातुही कीर नाहीं। देहीं देहभावो जिहीं। स्ववश केले ॥२९॥
 जयातें बाह्याची भाषा। नेणिजेचि निःशेष। अंतरीं सुख। एक आथि ॥३०॥ परी तें वेगळेपणें
 भोगिजे। जैसें पक्षियें फळ चुंबिजे। तैसें नव्हे तेथ विसरिजे। भोगितेपणही ॥३१॥ भोगीं अवस्था
 एकी उठी। ते अहंकाराचा अचळु लोटी। मग सुखेंसि घे आंठी। गाढेपणें ॥३२॥ तिये आलिंगनमेळीं।
 होय आपेंआप कवळी। तेथ जळ जैसें जळीं। वेगळें न दिसे ॥३३॥ कां आकाशीं वायु हारपे। तेथ
 दोन्ही हे भाष लोपे। तैसें सुखचि उरे स्वरूपें। सुरतीं तिये ॥३४॥ ऐशी द्वैताची भाष जाय। मग म्हणों
 जरी एकचि होय। तरी तेथ साक्षी कवणु आहे। जाणतें जें ॥३५॥

योऽन्तः सुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः। स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥२४॥

म्हणोनि असो हें आघवें। एथ न बोलणें काय बोलावें। ते खुणचि पावेल स्वभावें। आत्माराम
 ॥३६॥ जे ऐसेनि सुखें मातले। आपणपांचि आपण गुंतले। ते मी जाणें निखळ वोतले। सामरस्याचे
 ॥३७॥ ते आनंदाचे अनुकार। सुखाचे अंकुर। कीं महाबोधें विहारा। केले जैसें ॥३८॥ ते विवेकाचे
 गांवा। कीं परब्रह्मींचे स्वभावा। नातरी अळंकारले अवयवा। ब्रह्मविद्येचे ॥३९॥ ते सत्त्वाचे सात्त्विका। कीं
 चैतन्याचे आंगिका। हें बहु असो एकैका। वानिसी काई ॥१४०॥ तूं संतस्तवनीं रचसी। तरी कथेची
 से न करिसी। कीं निराळीं बोल देखसी। सनागर ॥४१॥ परि तो रसातिशयो मुकुळीं। मग ग्रंथार्थदीपु
 उजळीं। करीं साधुहृदयराउळीं। मंगळ उखा ॥४२॥ ऐसा गुरुचा उवायिला। निवृत्तिदासासी पातला।

मग तो म्हणे कृष्ण बोलिला। तेंचि आइका ॥४३॥ अर्जुना अनंत सुखाचां डोहीं। एकसरा तळुचि घेतला जिहीं। मग स्थिराऊनि तेही। तेंचि जाहले ॥४४॥

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः। छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥२५॥

अथवा आत्मप्रकाशें चोखें। जो आपणपेंचि विश्व देखे। तो देहेंचि परब्रह्म सुखें। मानूं येईल ॥४५॥ जें साचोकारें परमा। ना तें अक्षर निःसीमा। जिये गांवींचे निष्कामा। आर्थिकारिये ॥४६॥ जें महर्षी वाटलें। विरक्तां भागा फिटलें। जें निःसंशया पिकलें। निरंतर ॥४७॥

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम्। आर्भितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥२६॥

जिहीं विषयांपासोनि हिरतलें। चित्त आपुलें आपण जितिलें। ते निश्चित जेथ सुतले। चेतीचिना ॥४८॥ तें परब्रह्म निर्वाण। जें आत्मविदांचें कारण। तेंचि ते पुरुष जाण। पंडुकुमरा ॥४९॥ ते ऐसे कैसेनि जहाले। जे देहींचि ब्रह्मत्वा आले। हें ही पुससी तरी भलें। संक्षेपें सांगों ॥५०॥

स्पर्शान् कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवान्तरे भुवोः। प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ ॥२७॥

तरी वैराग्याचेनि आधारें। जिहीं विषय दवडूनि बाहिरें। शरीरीं एकंदरें। केलें मन ॥५१॥ सहजें तिहीं संधी भेटी। जेथ भूपल्लवां पडे गांठी। तेथ पाठिमोरी दिठी। पारुखोनियां ॥५२॥ सांडूनि दक्षिणवाम। प्राणापानसम। चित्तेंसीं व्योम। गामिये करिती ॥५३॥

यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः। विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥२८॥

तेथ जैसीं रथ्योदकें सकळें। घेऊनि गंगा समुद्रीं मिळे। मग एकेक वेगळें। निवडूं नये ॥५४॥ तैसी वासनांतराची विवंचना। मग आपैसी पारुखे अर्जुना। जे वेळीं गगनीं लयो मना। पवनें कीजे ॥५५॥ जेथ हें संसारचित्र उमटे। तो मनोरूप पटु फाटे। जैसें सरोवर आटे। मग प्रतिमा नाही ॥५६॥ तैसें मनपण मुदल जाय। मग अहंभावादिक कें आहे। म्हणोनि शरीरेंचि ब्रह्म होये। अनुभवी तो ॥५७॥

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्। सुहृदम् सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥२९॥

आम्हीं मागां हन सांगितलें। जे देहींचि ब्रह्मत्व पावले। ते येणें मार्गें आले। म्हणऊनियां ॥५८॥ आणि यमनियमांचे डोंगर। अभ्यासाचे सागर। क्रमोनि हे पार। पातले ते ॥५९॥ तिहीं आपणपें करुनि निर्लेप। प्रपंचाचें घेतलें माप। मग साचाचेंचि रूप। होऊनि ठेले ॥६०॥ ऐसा योगयुक्तीचा उद्देशु। जेथ बोलिला हृषीकेशु। तेथ अर्जुनु सुदंशु। म्हणोनि चमत्कारला ॥६१॥ तें देखिलिया कृष्णें जाणितलें। मग हांसोनि पार्थातें म्हणितलें। तें काई पां चित्त उवाडलें। इये बोलीं तुझें ॥६२॥ तंव अर्जुन म्हणे देवो। पर चित्तलक्षणांचा रावो। भला जाणितला जी भावो। मानसु माझा ॥६३॥ म्यां जें कांहीं विवरुनि पुसावें। तें आधींचि कळिलें देवें। तरी बोलिलें तेंचि सांगावें। विवळ करुनि ॥६४॥ एन्हवीं तरी अवधारा। जो दाविला तुम्हीं अनुसारा। तो पव्हण्याहूनि पायउतारा। सोहपा जैसा

॥६५॥ तैसा सांख्याहूनि प्रांजळा। परी आम्हांसारिखियां अभोळां। एथ आहाति कांहीं परि काळा।
तो साहों ये वर ॥६६॥ म्हणोनि एक वेळ देवा। तोचि पडताळा घेयावा। विस्तरेल तरी सांगावा।
साद्यंतुचि ॥६७॥ तंव कृष्ण म्हणती हो कां। तुज हा मार्गु गमला निका। तरी काय जाहलें ऐकीजो
कां। सुखें बोलों ॥६८॥ अर्जुना तूं परिससी। परिसोनि अनुष्ठिसी। तरी आम्हांसीचि वानी कायसी।
सांगावयाची ॥६९॥ आधींच चित्त मायेचें। वरी मिष जाहलें पढियंतयाचें। आतां तें अद्भुतपण
स्नेहाचें। कवण जाणे ॥१७०॥ ते म्हणों कारुण्यरसाची वृष्टि। कीं नवया स्नेहाची सृष्टि। हें असो
नेणिजे दृष्टी। हरीची वानूं ॥७१॥ जे अमृताची वोतली। कीं प्रेमचि पिऊन मातली। म्हणोनि
अर्जुनमोहें गुंतली। निघों नेणे ॥७२॥ हें बहु जें जें जल्पिजेला। तेथें कथेसि फांकु होईला। परि तें स्नेह
रूपा नयेला। बोलवरी ॥७३॥ म्हणोनि विसुरा काय येणें। तो ईश्वरु आकळावा कवणें। जो आपुलें
मान नेणे। आपणचि ॥७४॥ तरी मागीला ध्वनीआंतु। मज गमला सावियाचि मोहितु। जे बलात्कारें

असे म्हणतु। परिस बापा ॥७५॥ अर्जुना जेणें भेदें। तुझें कां चित्त बोधे। तैसें तैसें विनोदें।
निरूपिजेल ॥७६॥ तो काइसया नाम योगु। तयाचा कवण उपेगु। अथवा आर्थिकारप्रसंगु। कवणा
येथ ॥७७॥ ऐसें जें जें कांहीं। उक्त असे इये ठाई। तें आघवेंचि पाहीं। सांगेन आतां ॥७८॥ तूं चित्त
देऊनि अवधारीं। ऐसें म्हणोनि श्रीहरी। बोलिजेल ते पुढारी। कथा आहे ॥७९॥ श्रीकृष्ण अर्जुनासी
संगु। न सांडोनि सांगेल योगु। तो व्यक्त करूं प्रसंगु। म्हणे निवृत्तिदासु ॥१८०॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे योगगर्भो नाम पञ्चमोऽध्यायः

(श्लोक २९; ओव्या १८०)

ॐ श्रीसच्चिदानन्दार्पणमस्तु।

॥श्री॥

॥ज्ञानेश्वरी॥

अध्याय सहावा

मग रायातें म्हणे संजयो। तोचि आर्भिप्रावो अवधारिजो। कृष्ण सांगती जो। योगरूप ॥१॥
सहजें ब्रह्मरसाचें पारणें। केलें अर्जुनालागीं नारायणें। कीं तेचि अवसरी पाहुणे। पातलों आम्ही ॥२॥
कैसी दैवाची थोरी नेणिजे। जैसें तान्हेलिया तोय सेविजे। कीं तेंचि चवी करुनि पाहिजे। तंव अमृत
आहे ॥३॥ तैसें आम्हां तुम्हां जाहलें। जें आडमुठीं तत्त्व फावलें। तंव धृतराष्ट्रें म्हणितलें। हें न पुसों
तूतें ॥४॥ तया संजया येणें बोलें। रायाचें हृदय चोजवलें। जें अवसरीं आहे घेतलें। कुमरांचिया ॥५॥
हें जाणोनि मनीं हांसिला। म्हणे म्हातारा मोहें नाशिला। एन्हवीं बोलु तरी भला जाहला। अवसरीं ये
॥६॥ परि तें तैसें कैसेनि होईल। जात्यंधा कैसें पाहेल। तेवींचि येरु से घेईल। म्हणोनि बिहे ॥७॥
परि आपण चितीं आपुलां। निकियापरी संतोषला। जे तो संवादु फावला। कृष्णार्जुनांचा ॥८॥ तेणें

आनंदाचेनि धालेपणें। सार्भिप्राय अंतःकरणें। आतां आदरेंसी बोलणें। घडेल तया ॥९॥ तो गीतेमाजि
षष्ठींचा। प्रसंगु असे आयणीचा। जैसा क्षीरार्णवीं अमृताचा। निवाडु जाहला ॥१०॥ तैसें गीतार्थाचें
सार। जें विवेकसिंधूचें पार। नाना योगविभवभांडार। उघडलें कां ॥११॥ जें आदिप्रकृतीचें विसवणें।
जें शब्दब्रह्मासि न बोलणें। जेथूनि गीतावल्लीचें ठाणें। प्ररोहो पावे ॥१२॥ तो अध्याय हा सहावा।
वरि साहित्याचिया बरवा। सांगिजेल म्हणोनि परिसावा। चित्त देऊनी ॥१३॥ माझा मराठाचि बोलु
कौतुकें। परि अमृतातेंही पैजार्सीं जिंकें। ऐसीं अक्षरें रसिकें। मेळवीन ॥१४॥ जिये कोंवळिकेचेनि
पाडें। दिसती नादींचे रंग थोडे। वेधें परिमळाचें बीक मोडे। जयाचेनि ॥१५॥ ऐका रसाळपणाचिया
लोभा। कीं श्रवणींचि होति जिभा। बोलें इंद्रिया लागे कळंभा। एकमेकां ॥१६॥ सहजें शब्दु तरी विषो
श्रवणाचा। परि रसना म्हणे हा रसु आमुचा। घ्राणासि भावो जाय परिमळाचा। हा तोचि होईल
॥१७॥ नवल बोलतीये रेखेची वाहणी। देखता डोळ्यांही पुरों लागे धणी। ते म्हणती उघडली
खाणी। रूपाची हे ॥१८॥ जेथ संपूर्ण पद उभारे। तेथ मनचि धांवे बाहिरें। बोलु भुजाही आविष्करे।
आलिंगावयां ॥१९॥ ऐशीं इंद्रियें आपुलालियां भावीं। झोंबती परि तो सरिसेपणेंचि बुझावी। जैसा
एकला जग चेववी। सहस्रकरु ॥२०॥ तैसें शब्दाचें व्यापकपण। देखिजे असाधारण। पाहातयां
भावज्ञां फावती गुण। चिंतामणीचे ॥२१॥ हें असोतु या बोलाचीं ताटें भली। वरी कैवल्यरसें वोगरलीं।
ही प्रतिपत्ति मियां केली। निष्कामासी ॥२२॥ आतां आत्मप्रभा नीच नवी। तेचि करुनि ठाणदिवी।

* जो इंद्रियांतें चोरुनि जेवी। तयासीचि फावे ॥२३॥ येथ श्रवणाचेनि पांगें। वीण श्रोतयां व्हावें लागे। *
 * हे मनाचेनि निजांगें। भोगिजे गा ॥२४॥ आहाच बोलाची वालीफ फेडिजे। आणि ब्रम्हाचियाचि आंगा *
 * घडिजे। मग सुखेंसी सुरवाडिजे। सुखाचिमाजि ॥२५॥ ऐसें हळुवारपण जरी येईल। तरीच हें उपेगा *
 * जाईल। एरव्ही आघवी गोठी होईल। मुकयाबहिरयाची ॥२६॥ परी तें असो आतां आघवें। नलगे *
 * श्रोतयांतें कडसावें। जे एथ आर्धिकारिये स्वभावें। निष्कामकाम ॥२७॥ जिहीं आत्मबोधाचिया *
 * आवडी। केली स्वर्गसंसारची कुरोंडी। तेवांचूनि एथींची गोडी। नेणती आणिक ॥२८॥ जैसा वायसीं *
 * चंद्र नोळखिजे। तैसा ग्रंथु हा प्राकृतीं नेणिजे। आणि तो हिमांशुचि जेविं खाजें। चकोराचें ॥२९॥ *
 * तैसा सज्ञानासी तरी हा ठावो। आणि अज्ञानासी आन गांवो। म्हणोनि बोलावया विषय पहा हो। *
 * विशेषें नाहीं ॥३०॥ परि अनुवादला मीं प्रसंगें। तें सज्जनीं उपसाहावें लागे। आतां सांगेन काय श्रीरंगें। *
 * निरोपिलें जें ॥३१॥ तें बुद्धीही कळितां सांकडें। म्हणऊनि बोलीं विपायें सांपडे। परि *
 * निवृत्तिकृपादीपउजियेडें। देखेन मी ॥३२॥ जें दिठीही न पविजे। तें दिठीविण देखिजे। जरी अतींद्रिय *
 * लाहिजे। ज्ञानबळ ॥३३॥ ना तरी धातुवादाही न जोडे। तें लोहींचि पंधरें सांपडे। जरी दैवयोगें चढे। *
 * परिसु हातां ॥३४॥ तैसी सद्गुरुकृपा होये। तरी करितां काय आपु नोहे। म्हणऊनि ते अपार मातें *
 * आहे। ज्ञानदेवो म्हणे ॥३५॥ तेणें कारणें मी बोलेन। बोलीं अरुपाचें रूप दावीन। अतींद्रिय परि *

* भोगवीन। इंद्रियांकरवीं ॥३६॥ *

श्री भगवानुवाच : - अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।

स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः ॥१॥

* आइका यश श्री औदार्या। ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्या। हे साही गुणवर्या। वसती जेथ ॥३७॥ म्हणोनि तो *
 * भगवंतु। जो निःसंगाचा सांगातु। तो म्हणे पार्था दत्तचित्तु। होई आतां ॥३८॥ आइकें योगी आणि *
 * संन्यासी जनीं। हे एकचि सिनाने झणीं मानीं। एन्हवी विचारिजती जंव दोन्ही। तंव एकचि ते ॥३९॥ *
 * सांडिजे दुजया नामाचा आभासु। तरी योगु तोचि संन्यासु। पहातां ब्रह्मीं नाहीं अवकाशु। दोहीमाजी *
 * ॥४०॥ जैसें नामाचेनि अनारिसेपणें। एका पुरुषातें बोलावणें। कां दोहीमार्गी जाणें। एकाचि ठाया *
 * ॥४१॥ ना तरी एकचि उदक सहजें। परि सिनानां घटीं भरिजे। तैसें भिन्नत्व हें जाणिजे। योगसंन्यासांचें *
 * ॥४२॥ आइकें सकळ संमतें जगीं। अर्जुना गा तोचि योगी। जो कर्म करुनि रागी। नोहेचि फळीं *
 * ॥४३॥ जैसी मही हे उडिजें। जनी अहंबुद्धीवीण सहजें। आणि तेथिंचीं तियें बीजें। अपेक्षीना *
 * ॥४४॥ तैसा अन्वयाचेनि आधारें। जातीचेनि अनुकारें। जें जेणें अवसरें। करणें पावे ॥४५॥ तें *
 * तैसेंचि उचित करी। परी साटोपु नोहे शरीरीं। आणि बुद्धिही करोनि फळवेरीं। जायेचिना ॥४६॥ *
 * ऐसा तोचि संन्यासी। पार्था गा परियेसीं। तोचि भरंवसेनिसीं। योगीश्वरु ॥४७॥ वांचूनि उचित कर्म *
 * प्रासंगिक। तयातें म्हणे हें सांडीन बद्धक। तरी टांकोटांकीं आणिक एका मांडीचि तो ॥४८॥ जैसा *

क्षाळूनियां लेपु एकु। सवेंचि लाविजे आणिकु। तैसेनि आग्राहाचा पाइकु। विचंबे वायां ॥४९॥
गृहस्थाश्रमाचें ओझें। कपाळीं आधींचि आहे सहजें। कीं तेंचि संन्याससवा ठेविजे। सरिसें पुढती
॥५०॥ म्हणूनि आग्निसेवा न सांडितां। कर्माची रेखा नोलांडितां। आहे योगसुख स्वभावता। आपणपांचि
॥५१॥

यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव। न ह्यसंन्यस्तसंकल्पो योगी भवति कश्चन ॥२॥

एकें संन्यासी तोचि योगी। ऐसी एकवाक्यतेची जे जर्गी। गुढी उभविली अनेगीं। शास्त्रांतरीं
॥५२॥ जेथ संन्यासिला संकल्पु तुटे। तेथेचि योगाचें सार भेटे। ऐसें हें अनुभवाचेनि धटें। साचें जया
॥५३॥

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते। योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥३॥

आतां योगाचळाचा निमथा। जरी ठाकावा आथि पार्था। तरी सोपाना या कर्मपथा। चुका झणीं
॥५४॥ येणें यमनियमांचेनि तळवटें। रिगे आसनाचिये पाउलवाटे। येई प्राणायामाचेनि आडकटें।
वरौता गा ॥५५॥ मग प्रत्याहाराचा आधाडा। जो बुद्धिचियाहि पाया निसरडा। जेथ हटिये सांडिती
होडा। कडेलग ॥५६॥ तरी अभ्यासाचेनि बळें। प्रत्याहारीं निराळे। नखी लागेल ढाळें ढाळें। वैराग्याची
॥५७॥ ऐसा पवनाचेनि पाठारें। येतां धारणेचेनि पैसारें। क्रमी ध्यानाचें चवरें। सांडे तंव ॥५८॥ मग

तया मार्गाची धांवा। पुरेल प्रवृत्तीची हांवा। जेथ साध्यसाधना खेंवा। समरसें होय ॥५९॥ जेथ पुढील
पैस पारुखे। मागील स्मरावें तें ठाके। ऐसिये सरिसीये भूमिके। समाधि राहे ॥६०॥ येणें उपायें
योगारूढु। जो निरवधि जाहला प्रौढु। तयांचिया चिन्हांचा निवाडु। सांगेन आइकें ॥६१॥

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषजते। सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ॥४॥

तरी जयाचिया इंद्रियांचिया घरा। नाहीं विषयांचिया येरझारा। जो आत्मबोधाचियां वोवरां।
पहुडला असे ॥६२॥ जयाचें सुखदुःखाचेनि आंगें। झगटलें मानस चेवो नेघे। विषय पार्सींही आलिया
से न रिघे। हें काय म्हणऊनि ॥६३॥ इंद्रियें कर्माचां ठायीं। वाढीनलीं परि कहीं। फळहेतूचि चाड
नाहीं। अंतःकरणीं ॥६४॥ असतेनि देहें एतुला। जो चेतुचि दिसे निदेला। तोचि योगारूढु भला।
वोळखें तूं ॥६५॥ तेथ अर्जुन म्हणे अनंता। हें मज विस्मो बहु आइकतां। सांगें तया ऐसी हे योग्यता।
कवणें दीजे ॥६६॥

उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नात्मानमवसादयेत्। आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥५॥

तंव हांसोनि कृष्ण म्हणे। तुझे नवल ना हें बोलणें। कवणासि काय दिजेल कवणें। येथ अद्वैतीं
इये ॥६७॥ पै व्यामोहाचिया शेजे। बळिया आर्विद्या निद्रित होईजे। ते वेळीं दुःस्वप्न हा भोगिजे।
जन्ममृत्यूंचा ॥६८॥ पाठीं अवसांत ये चेवो। तें तें अवघेंचि होय वावो। ऐसा उपजे नित्य सद्भावो।
तोहि आपणपांचि ॥६९॥ म्हणऊनि आपणचि आपणपेया। घातु कीजतु असे धनंजया। चित्त

देऊनि नाथिलिया। देहाभिमाना ॥७०॥

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः। अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥६॥

हा विचारुनि अहंकारु सांडिजे। मग असतीच वस्तु होईजे। तरी आपली स्वस्ति सहजें। आपण केली ॥७१॥ एन्हवीं कोशकीटकाचिया परी। तो आपणपेया आपण वैरी। जो आत्मबुद्धि शरीरीं। चारुस्थळीं ॥७२॥ कैसे प्राप्तीचिये वेळे। निदैवा अंधळेपणाचे डोहळे। कीं असते आपुले डोळे। आपण झांकी ॥७३॥ कां कवण एकु भ्रमलेपणें। मी तो नव्हे गा चोरलों म्हणे। ऐसा नाथिला छंदु अंतःकरणें। घेऊनि ठाके ॥७४॥ एरव्ही होय तें तोचि आहे। परि काई कीजे बुद्धि तैशी नोहे। देखा स्वप्नींचेनि घायें। कीं मरे साचें ॥७५॥ जैसी ते शुकाचेनि आंगभारें। नळिका भोविन्नली एरी मोहरे। तरी तेणें उडावें परि न पुरे। मनशंका ॥७६॥ वायांचि मान पिळी। अटुवें हियें आवळी। टिटांतु नळी। धरुनि ठाके ॥७७॥ म्हणे बांधला मी फुडा। ऐसिया भावनेचियां पडे खोडां। कीं मोकळिया पायांचा चवडा। गोंवी आर्धिकें ॥७८॥ ऐसा काजेंवीण आंतुडला। तो सांग पां काय आणिकें बांधला। मग नोसंडी जन्ही नेला। तोडूनि अर्धा ॥७९॥ म्हणऊनि आपणपेया आपणचि रिपु। जेणें वाढविला हा संकल्पु। येर स्वयंबुद्धि म्हणे बापु। जो नाथिलें नेघे ॥८०॥

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः। शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ॥७॥

तया स्वांतःकरणजिता। सकळकामोपशांता। परमात्मा परौता। दुरी नाही ॥८१॥ जैसा किडाचा दोषु जाये। तरी पंधरें तेंचि होये। तैसें जीवा ब्रह्मत्व आहे। संकल्पलोपीं ॥८२॥ हा घटाकारु जैसा। निमालिया तया अवकाशा। नलगे मिळों जाणें आकाशा। आना ठाया ॥८३॥ तैसा देहाहंकारु नाथिला। हा समूळ जयाचा नाशिला। तोचि परमात्मा संचला। आधींचि आहे ॥८४॥ आतां शीतोष्णाचिया वाहणी। तेथ सुखदुःखाची कडसणी। इयें न समाती कांहीं बोलणीं। मानापमानाचीं ॥८५॥ जे जया वाटा सूर्यु जाये। तेउतें तेजाचें विश्व होये। तैसें तया पावे तें आहे। तोचि म्हणउनी ॥८६॥ देखें मेघौनि सुटती धारा। तिया न रुपती जैसिया सागरा। तैशीं शुभाशुभें योगीश्वरा। नव्हती आनें ॥८७॥

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः। युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाश्चनः ॥८॥

जो हा विज्ञानात्मकु भावो। तया विवरितां जाहला वावो। मग लागला जंव पाहो। तंव ज्ञान तें तोचि ॥८८॥ आतां व्यापकु कीं एकदेशी। हे ऊहापोही जे ऐसी। ते करावी ठेली आपैशी। दुजेनवीण ॥८९॥ ऐसा शरीरीचि परि कौतुकें। परब्रह्माचेनि पाडें तुके। जेणें जितलीं एकें। इंद्रियें गा ॥९०॥ तो जितेंद्रियु सहजें। तोचि योगयुक्तु म्हणिजे। जेणें सानें थोर नेणिजे। कवणे काळीं ॥९१॥ देखें सोनियाचें निखळ। मेरुयेसणें ढिसाळ। आणि मातियेचें डिखळ। सरिसेंचि मानी ॥९२॥ पाहतां पृथ्वीचें मोल थोडें। ऐसें अनर्घ्य रत्न चोखडें। देखें दगडाचेनि पाडें। निचाडु ऐसा ॥९३॥

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥९॥

तेथ सुहृद आणि शत्रु। कां उदासु आणि मित्रु। हा भावभेद विचित्रु। कल्पूं कैचा ॥९४॥ तया बंधु कोण काह्याचा। द्वेषिया कवणु तयाचा। मीचि विश्व ऐसा जयाचा। बोधु जाहला ॥९५॥ मग तयाचिये दिठी। अधमोत्तम असे किरीटी। काय परिसाचिया कसवटी। वानिया कीजे ॥९६॥ ते जैशी निर्वाण वर्णुचि करी। तैशी जयाची बुद्धि चराचरीं। होय साम्याची उजरी। निरंतर ॥९७॥ जे ते विश्वालंकाराचे विसुरे। जरी आहाती आनानें आकारें। तरी घडले ऐकेंचि भांगारें। परब्रह्म ॥९८॥ ऐसें जाणणें जें बरवें। तें फावलें तया आघवें। म्हणोनि आहाचवाहाचें न झकवे। येणें आकारचित्रें ॥९९॥ घापे पटामार्जीं दृष्टी। दिसे तंतूंची सेंघ सृष्टी। परि तो एकवांचूनि गोठी। दुजी नाही ॥१००॥ ऐसेनि प्रतीती हे गवसे। ऐसा अनुभव जयातें असे। तोचि समबुद्धि हें अनारिसें। नव्हे जाणें ॥१०१॥ जयाचें नांव तीर्थरावो। दर्शने प्रशस्तीसि ठावो। जयाचेनि संगें ब्रह्मभावो। भ्रांतासी ॥१०२॥ जयाचेनि बोलें धर्मु जिये। दिठी महासिद्धीतें विये। देखें स्वर्गसुखादि झ्यें। खेळु जयाचा ॥१०३॥ विपायें जरी आठवलें चित्ता। तरी दे आपुली योग्यता। हें असो तयातें प्रशंसिता। लाभु आथि ॥१०४॥ पुढती अस्तवेना ऐसें। जया पाहलें अद्वैतदिवसें। मग आपणपांचि आपण असे। अखंडित ॥१०५॥

योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः। एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपग्रिहः ॥१०॥

ऐसिया दृष्टी जो विवेकी। पार्था तो एकाकी। सहजें अपग्रिही जे तिहीं लोकीं। तोचि म्हणऊनि ॥१०६॥ ऐसियें असाधारणें। निष्पन्नाचीं लक्षणें। आपुलेनि बहुवसपणें। कृष्ण म्हणे ॥१०७॥ तो ज्ञानियांचा बापु। देखणेयांचे दिठीचा दीपु। जया दादुलयाचा संकल्पु। विश्व रची ॥१०८॥ प्रणवाचिये पेठे। जाहलें शब्दब्रह्म माजिटें। तें जयाचियें यशा धाकुटें। वेढूं न पुरे ॥१०९॥ जयाचेनि आंगिकें तेजें। आवो रविशशीचिये वणिजे। म्हणऊनि जग हें वेसजे। वीण असे तया ॥११०॥ हां गा नांवचि एक जयाचें। पाहतां गगनही दिसे टांचें। गुण एकैक काय तयाचे। कळिशील तूं ॥१११॥ म्हणोनि असो हें वानणें। सांगों नेणों कवणाचीं लक्षणें। दावावीं मिषें येणें। कां बोलिलों तें ॥११२॥ ऐकें द्वैताचा ठावोचि फेडी। ते ब्रह्मविद्या कीजेल उघडी। तरि अर्जुनु पढिये हे गोडी। नासेल हन ॥११३॥ म्हणोनि तें तैसें बोलणें। नव्हे सपातळ आड लावणें। केलें मनचि वेगळवाणें। भोगावया ॥११४॥ जया सोहंभाव हा अटकु। मोक्षसुखालागोनि रंकु। तयाचिये दिठीचा झणें कळंकु। लागेल तुझिया प्रेमा ॥११५॥ विपायें अहंभाव ययाचा जाईल। मी तेंचि हा जरी होईल। तरि मग काय कीजेल। एकलेया ॥११६॥ दिठीचि पाहतां निविजे। कां तोंड भरोनि बोलिजे। नातरी दाटूनि खेंव दीजे। ऐसें कोण आहे ॥११७॥ आपुलिया मना बरवी। असमाई गोठी जीवीं। ते कवणेंसि चावळावी। जरी ऐक्य जाहलें ॥११८॥ झ्या काकुळती जनार्दनं। अन्योपदेशाचेनि हातासनें। बोलामार्जीं मन मनें। आलिंगूं सरलें ॥११९॥ हें परिसतां जरी कानडें। तरी जाण पां पार्थ उघडें। कृष्णसुखाचेंचि रूपडें। वोतलें गा ॥१२०॥ हें असो वयसेचिये

* शेवटीं। जैसें एकचि विये वांझोटी। मग ते मोहाची त्रिपुटी। नाचों लागे ॥२१॥ तैसें जाहलें अनंता। *
 * ऐसें तरि मी न म्हणतां। जरी तयाचा न देखतां। आर्तिशयो एथ ॥२२॥ पाहा पां नवल कैसें चोजा। *
 * कें उपदेशु केउतें झुंज। परि पुढें वालभाचें भोज। नाचत असे ॥२३॥ आवडी आणि लाजवी। व्यसन *
 * आणि शिणवी। पिसें आणि न भुलवी। तरी तेंचि काइ ॥२४॥ म्हणउनि भावार्थु तो ऐसा। अर्जुन *
 * मैत्रियेचा कुवासा। कीं सुखें शृंगारलिया मानसा। दर्पणु तो ॥२५॥ यापरी बाप पुण्यपवित्र। जर्गी *
 * भक्तिबीजासि सुक्षेत्र। तो कृष्णकृपे पात्र। याचिलार्गी ॥२६॥ हो कां आत्मनिवेदनातळींची। जे *
 * पीठिका आहे सख्याची। पार्थु आर्द्धिष्ठात्री तेथिंची। मातृका गा ॥२७॥ पासींचि गोसावी वर न *
 * वानिजे। मग पाइकाचा गुण घेईजे। ऐसा अर्जुनुचि तो सहजें। पढिये हरी ॥२८॥ पाहा पां अनुरागें *
 * भजे। जे प्रियोत्तमं मानिजे। ते पतीहीहूनि काय न वर्णिजे। पतिव्रता ॥२९॥ तैसा अर्जुनुचि विशेषें *
 * स्तवावा। ऐसें आवडलें मज जीवा। जे तो त्रिभुवनींचियां दैवां। एकायतनु जाहला ॥१३०॥ जयाचिया *
 * आवडीचेनि पांगें। अमूर्तुही मूर्ति आवगे। पूर्णाहि परी लागे। अवस्था जयाची ॥३१॥ तंव श्रोते *
 * म्हणती दैव। कैसी बोलाची हवावा। काय नादातें हन बरवा। जिणोनि आली ॥३२॥ हां हो नवल नोहे *
 * देशी। मन्हाटी बोलिजे तरी ऐसी। वाणें उमटताहे आकाशीं। साहित्यरंगाचें ॥३३॥ कैसें उन्मेखचांदिणें *
 * तारा। आणि भावार्थ पडे गारा। हेचि श्लोकार्थकुमुदी तरी फारा। साविया होती ॥३४॥ चाडचि *

* निचाडां करी। ऐसी मनोरथीं ये थोरी। तेणें विवळले अंतरीं। तेथ डोलु आला ॥३५॥ तें निवृत्तिदासें *
 * जाणितलें। मग अवधान द्या म्हणितलें। नवल पांडवकुळीं पाहलें। कृष्णदिवसें ॥३६॥ देवकीया *
 * उदरीं वाहिला। यशोदा सायासें पाळिला। कीं शेखीं उपेगा गेला। पांडवासी ॥३७॥ म्हणऊनि बहु *
 * दिवस वोळगावा। कां अवसरु पाहोनि विनवावा। हाही सोसु तया सदैवा। पडेचिना ॥३८॥ हें असो *
 * कथा सांगें वेगीं। मग अर्जुन म्हणे सलगी। देवा इयें संतचिन्हें हन आंगीं। न ठकती माझां ॥३९॥ *
 * एन्हवीं या लक्षणांचिया निजसारा। मी अपाडें कीर अपुरा। परि तुमचेनि बोलें अवधारा। थोरावें जरी *
 * ॥१४०॥ जी तुम्ही चित्त देयाला। तरी ब्रह्म माझें होईला। काय जहालें अभ्यासिजेला। सांगाल तें *
 * ॥४१॥ हां हो नेणों कवणाची काहाणी। आइकोनि श्लाघत असों अंतःकरणीं। ऐसी जाहलेपणाची *
 * शिरयाणी। कायसी देवा ॥४२॥ हें आंगें म्या होइजो कां। येतुलें गोसावी आपुलेंपणें कीजो कां। तंव *
 * हांसोनि कृष्ण हो कां। करुं म्हणती ॥४३॥ देखा संतोषु एक न जोडे। तंवचि सुखाचें सेंघ सांकडें। *
 * मग जोडिलिया कवणेकडे। अपुरें असे ॥४४॥ तैसा सर्वेश्वरु बळिया सेवकें। म्हणोनि ब्रह्मही होय तो *
 * कौतुकें। परि कैसा भारें आतला पिके। दैवाचेनि ॥४५॥ जो जन्मसहस्रांचियासाठीं। इंद्रादिकांही *
 * महागु भेटी। तो आधीनु केतुला किरीटी। जे बोलुही न साहे ॥४६॥ मग एका जें पांडवें। म्हणितलें *
 * ब्रह्म म्यां होआवें। तें अशेषही देवें। अवधारिलें ॥४७॥ तेथ ऐसेंचि एक विचारिलें। जे या ब्रह्मत्वाचे *
 * डोहळे जाहले। परि उदरा वैराग्य आहे आलें। बुद्धीचिया ॥४८॥ एन्हवीं दिवस तरी अपुरे। परी *

* वैराग्यवसंताचेनि भरे। जे सोहंभावमहुरे। मोडोनि आला ॥४९॥ म्हणोनि प्राप्तिकळें फळतां। यासि *
 * वेळु न लागेल आतां। होय विरक्तु ऐसा अनंता। भरंवसा जाहला ॥५०॥ म्हणे जें जें हा आर्धिष्ठीला *
 * तें आतां आरंभींच यया फळेला। म्हणोनि सांगितला न वचेल। अभ्यासु वायां ॥५१॥ ऐसें विवरोनियां *
 * श्रीहरी। म्हणितलें तिये अवसरीं। अर्जुना हा अवधारीं। पंथराजु ॥५२॥ तेथ प्रवृत्तिरूचां बुडीं। *
 * दिसती निवृत्तिफळाचिया कोडी। जिये मार्गीचा कापडी। महेशु आझुनी ॥५३॥ पै योगिवृंदें वहिलीं। *
 * आडचि आकाशीं निघालीं। कीं तेथ अनुभवाचां पाउलीं। धोरणु पडिला ॥५४॥ तिहीं आत्मबोधाचेनि *
 * उजुकारें। धांव घेतली एकसरें। कीं येर सकळ मार्ग निदसुरे। सांडूनिया ॥५५॥ पाठीं महर्षी येणें *
 * आले। साधकांचे सिद्ध जाहाले। आत्मविद थोरावले। येणेंचि पंथें ॥५६॥ हा मार्गु जें देखिजे। तें *
 * तहान भूक विसरिजे। रात्रिदिवसु नेणिजे। वाटे झये ॥५७॥ चालतां पाऊल जेथ पडे। तेथ अपवर्गाची *
 * खाणी उघडे। आव्हांटलिया तरी जोडे। स्वर्गसुख ॥५८॥ निगिजे पूर्वीलिया मोहरा। कीं येईजे *
 * पश्चिमेचिया घरा। निश्चळपणें धनुर्धरा। चालणें एथिंचें ॥५९॥ येणें मार्गें जया ठाया जाइजे। तो गांवो *
 * आपणचि होईजे। हें सांगों काय सहजें। जाणसी तूं ॥६०॥ तेथ म्हणितलें देवा। तरी तेंचि मग *
 * केव्हां। कां आर्तिसमुद्रौनि न काढावा। बुडतु जी मी ॥६१॥ तंव कृष्ण म्हणती ऐसें। हें उत्संखळ *
 * बोलणें कायसें। आम्ही सांगतसों आपैसें। वरि पुशिलें तुवां ॥६२॥ *

* शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः। नात्युच्छ्रितं नातिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥११॥ *
 * तरी विशेषें आतांचि बोलिजेला। परि तें अनुभवे उपेगा जाईला। म्हणोनि तैसें एक लागेला। स्थान *
 * पाहावें ॥६३॥ जेथ आराणुकेचेनि कोडें। बैसलिया उठों नावडे। वैराग्यासी दुणीव चढे। देखिलिया *
 * जें ॥६४॥ जो संतीं वसविला ठावो। संतोषासि सावावो। मना होय उत्सावो। धैर्याचा ॥६५॥ *
 * अभ्यासुचि आपणयातें करी। हृदयातें अनुभव वरी। ऐसी रम्यपणाची थोरी। अखंड जेथ ॥६६॥ *
 * जया आड जातां पार्था। तपश्चर्या मनोरथा। पाखांडियाही आस्था। समूळ होय ॥६७॥ स्वभावे वाटे *
 * येतां। जरी वरपडा जाहला अवचितां। तरी सकामुही परि माघौता। निघों विसरे ॥६८॥ ऐसें न *
 * राहतयातें राहावी। भ्रमतयातें बैसवी। थापटूनि चेववी। विरक्तीतें ॥६९॥ हें राज्य वर सांडिजे। मग *
 * निवांता एथेंचि आर्सिजे। ऐसें शृंगारियांहि उपजे। देखतखेंवों ॥७०॥ जें येणें मानें बरवंटा। आणि *
 * तैसेंचि आर्ति चोखटा। जेथ आर्धिष्ठान प्रगटा। डोळां दिसे ॥७१॥ आणिकही एक पाहावें। जें साधकीं *
 * वसतें होआवें। आणि जनाचेनि पायरवें। मैळेचिना ॥७२॥ जेथ अमृताचेनि पाडें। मुळेंहीसकट गोडें। *
 * जोडती दाटें झाडें। सदा फळतीं ॥७३॥ पाउला पाउला उदकें। परि वर्षाकाळींही चोखें। निझरिं कां *
 * विशेखें। सुलभे जेथ ॥७४॥ हा आतपुही अळुमाळु। जाणिजे तरी शीतळु। पवनु आर्ति निश्चळु। मंद *
 * झुळके ॥७५॥ बहुतकरुनि निःशब्द। दाट न रिगे श्वापदा। शुक हन षट्पदा। तेउतें नाहीं ॥७६॥ *
 * पाणिलगें हंसें। दोनी चारी सारसें। कवणें एके वेळे बैसे। तरी कोकिळही हो ॥७७॥ निरंतर नाहीं। तरि *

आलीं गेलीं कांहीं। होतु कां मयूरेंही। आम्ही ना न म्हणों ॥७८॥ परि आवश्यक पांडवा। ऐसा ठावो जोडावा। तेथ निगूढ मठ होआवा। कां शिवालय ॥७९॥ दोहीं माजि आवडे तें। जें मानलें होय चित्तें। बहुतकरुनि एकांते। बैसिजे गा ॥१८०॥ म्हणोनि तैसें तें जाणावें। मन राहतें पाहावें। राहेल तेथ रचावें। आसन ऐसें ॥८१॥ वरी चोखट मृगसेवडी। माजी धूतवस्त्राची घडी। तळवटीं अमोडी। कुशांकुर ॥८२॥ सकोमळ सरिसे। सुबद्ध राहती आपैसे। एकें पाडें तैसे। वोजा घालीं ॥८३॥ परि सावियाचि उंच होइल। तरि आंग हन डोलेल। नीच तरी पावेल। भूमिदोषु ॥८४॥ म्हणोनि तैसें न करावें। समभावे धरावें। हें बहु असो होआवें। आसन ऐसें ॥८५॥

तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यत्चित्तेन्द्रियक्रियः। उपविश्यासने युज्याद् योगमात्मविशुद्धये ॥१२॥

मग तेथ आपण। एकाग्र अंतःकरण। करुनि सदगुरुस्मरण। अनुभविजे ॥८६॥ तैसें स्मरतेनि आदरें। सबाह्य सात्त्विकें भरे। जंव कठिणपण विरे। अहंभावाचें ॥८७॥ विषयांचा विसरु पडे। इंद्रियांची कसमस मोडे। मनाची घडी घडे। हृदयामार्जी ॥८८॥ ऐसें ऐक्य हें सहजें। फावे तंव राहिजे। मग तेणेंचि बोधें बैसिजे। आसनावरी ॥८९॥

समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः। संप्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् ॥१३॥

आतां आंगातें आंग वरी। पवनातें पवनुचि धरी। ऐसे अनुभवाची उजरी। होंचि लागे ॥१९०॥

प्रवृत्ति माघौति मोहरे। समाधि ऐलाडी उतरे। आघवें अभ्यासूं सरे। बैसतखेवो ॥९१॥ मुद्रेची प्रौढी ऐशी। तेचि सांगिजेल आतां परियेसीं। तरी उरु या जघनासी। जडोनि घालीं ॥९२॥ चरणतळें देव्हडी। आधारद्रुमाचां बुडीं। सुघटितें गाढीं। संचरीं पां ॥९३॥ सव्य तें तळीं ठेविजे। तेणें सिवणीमध्यु पीडिजे। वरी बैसे तो सहजें। वामचरणु ॥९४॥ गुदमेंद्राआंतौतीं। चारी अंगुळें निगुतीं। तेथ सार्ध सार्ध प्रांतीं। सांडूनियां ॥९५॥ माजि अंगुळ एक निगे। तेथ टांचेचेनि उत्तरभागे। नेहेटिजे वरि आंगें। पेललेनि ॥९६॥ उचलिलें कां नेणिजे। तैसें पृष्ठांत उचलिजे। गुल्फद्वय धरिजे। तेणेंचि मानें ॥९७॥ मग शरीरसंचु पार्था। अशेषही सर्वथा। पाष्णीचा माथा। स्वयंभू होय ॥९८॥ अर्जुना हें जाणा। मूळबंधाचें लक्षण। वज्रासन गौण। नाम यासी ॥९९॥ ऐसी आधारीं मुद्रा पडे। आणि आधींचा मार्गु मोडे। तेथ अपानु आंतलीकडे। वोहोटों लागे ॥१००॥ तव करसंपुट आपैसें। वामचरणीं बैसे। बाहुमूळीं दिसे। थोरीव आली ॥१०१॥ माजि उभारलेनि दंडें। शिरकमळ होय गाढें। नेत्रद्वारींचीं कवाडें। लागूं पाहती ॥१०२॥ वरचिलें पातीं ढळती। तळींचीं तळीं पुंजाळतीं। तेथ अर्धोन्मीलित स्थिती। उपजे तया ॥१०३॥ दिठी राहोनी आंतुलीकडे। बाहेर पाऊल घाली कोडें। ते ठायीं ठावो पडे। नासाग्रपीठीं ॥१०४॥ ऐसें आंतुचां आंतुचि रचे। बाहेरीं मागुतें न वचे। म्हणोनि राहणें आधिये दिठीचें। तेथेंचि होय ॥१०५॥ आतां दिशांची भेटी घ्यावी। कां रूपाची वाट पाहावी। हे चाड सरे आघवी। आपैसया ॥१०६॥ मग कंठनाळ आटे। हनुवटी हे हडौती दाटे। ते गाढी होवोनि नेहटे। वक्षःस्थळीं ॥१०७॥ माजि घंटिका

* लोपे। वरी बंधु जो आरोपे। तो जालंधरु म्हणिपे। पंडुकुमरा ॥८॥ नाभी वरी पोखे। उदर हें थोके।
 * अंतरीं फांके। हृदयकोशु ॥९॥ स्वाधिष्ठानावरिचिले कांठीं। नाभिस्थानातळवटीं। बंधु पडे किरीटी।
 * वोढियाणा तो ॥२१०॥ ऐसी शरीराबाहेरलीकडे। अभ्यासाची पाखर पडे। तंव आंतु त्राय मोडे।
 * मनोधर्माची ॥११॥ कल्पना निमे। प्रवृत्ती शमे। आंग मन विरमे। सावियाचि ॥१२॥ क्षुधा काय
 * जाहाली। निद्रा केउती गेली। हे आठवणही हारपली। न दिसे वेगां ॥१३॥ जो मूळबंधें कोडला।
 * अपानु माघौता मुरडला। तो सर्वेचि वरी सांकडला। फुगु धरी ॥१४॥ क्षोभलेपणें माजे। उवाइला
 * ठायीं गाजे। मणिपूरेंसीं झुंजे। राहोनियां ॥१५॥ मग थावली ते वाहटुळी। सेंघ घेऊनि घरडहुळी।
 * बाळपणींची कुहीटुळी। बाहेर घाली ॥१६॥ भीतरीं वळी न धरे। कोठ्यामाजी संचरे। कफपितांचे
 * थारे। उरों नेदी ॥१७॥ धातूंचे समुद्र उलंडी। मेदाचे पर्वत फोडी। आंतली मज्जा काढी। आस्थिगत
 * ॥१८॥ नाडीतें सोडवी। गात्रांतें विघडवी। साधकातें भेडसावी। परि बिहावें ना ॥१९॥

प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः। मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत् मत्परः ॥१४॥

* व्याधीतें दावी। सर्वेचि हरवी। आपपृथ्वी कालवी। एकवाट ॥२२०॥ तंव येरीकडे धनुर्धरा।
 * आसनाचा उबारा। शक्ती करी उजगरा। कुंडलिनीये ॥२१॥ नागाचें पिलें। कुंकुमें नाहलें। वळण
 * घेऊनि आलें। सेजे जैसें ॥२२॥ तैशी ते कुंडलिनी। मोटकी औट वळणी। अधोमुख सर्पिणी।

* निजैलीअसे ॥२३॥ विद्युल्लतेची विडी। वह्निज्वाळांची घडी। पंधरेयाची चोखडी। घोंटीव जैशी
 * ॥२४॥ तैशी सुबद्ध आटली। पुटीं होती दाटली। ते वज्रासनं चिमुटली। सावध होय ॥२५॥ तेथ
 * नक्षत्र जैसें उलंडलें। कीं सूर्याचें आसन मोडलें। तेजाचें बीज विरुढलें। अंकुरेंशीं ॥२६॥ तैशी
 * वेढियातें सोडिती। कवतिकें आंग मोडिती। कंदावरी शक्ती। उठली दिसे ॥२७॥ सहजें बहुतां
 * दिवसांची भूका। वरि चेवविली तें होय मिष। मग आवेशें पसरि मुखा। ऊर्ध्वा उजू ॥२८॥ तेथ
 * हृदयकोशातळवटीं। जो पवनु भरे किरीटी। तया सगळेयाचि मिठी। देऊनि घाला ॥२९॥ मुखींचां
 * ज्वाळीं। तळीं वरी कवळी। मांसाची वडवाळी। आरोगूं लागे ॥३०॥ जे जे ठाय समांसा। तेथ आहाच
 * जोडे घाउसा। पाठी एकदोनी घांसा। हियाही भरी ॥३१॥ मग तळवे तळहात शोधी। उर्ध्वीं चे खंड
 * भेदी। झाडा घे संधी। प्रत्यंगाचा ॥३२॥ आधार तरी न संडी। परि नखींचेंही सत्त्व काढी। त्वचा
 * धुऊनि जडी। पांजरेंशीं ॥३३॥ अस्थींचे नळे निरपे। शिरांचे हीर वोरपे। तंव बाहेरी विरुढी करपे।
 * रोमबीजांची ॥३४॥ मग सप्तधातूंचां सागरीं। ताहानेली घोट भरी। आणि सर्वेचि उन्हाळा करी।
 * खडखडीत ॥३५॥ नासापुटौनि वारा। जो जातसे अंगुळें बारा। तो गचिये धरुनि माघारा। आंतु
 * घाली ॥३६॥ तेथ अध वरौतें आकुंचे। ऊर्ध्व तळौतें खाचे। तया खेवामाजि चक्रांचे। पदर उरती
 * ॥३७॥ एन्हवीं तरी दोन्ही तेव्हांचि मिळती। परी कुंडलिनी नावेक दुश्चित होती। ते तयातें म्हणे
 * परौती। तुम्हीचि कायसीं एथें ॥३८॥ आइकें पार्थिव धातु आघवी। आरोगितां कांहीं नुरवी। आणि

* आपातें तंव ठेवी। पुसोनियां ॥३९॥ ऐसी दोनी भूतें खाये। ते वेळीं संपूर्ण धाये। मग सौम्य होऊनि *
 * राहे। सुषुम्नेपार्शी ॥२४०॥ तेथ तृतीयेनि संतोषें। गरळ जें वमी मुखें। तेणें तियेचेनि पीयूषें। प्राणु *
 * जिये ॥४१॥ तो आगीआंतूनि निघे। परि सबाह्य निववूंचि लागे। ते वेळीं कसु बांधिती आंगें। *
 * सांडिला पुढती ॥४२॥ मार्ग मोडिती नाडीचे। नवविधपण वायूचें। जाय म्हणऊनि शरीराचे। धर्मु *
 * नाही ॥४३॥ इडा पिंगळा एकवटती। गांठी तिन्ही सुटती। साही पदर फुटती। चक्रांचे हे ॥४४॥ मग *
 * शशी आणि भानु। ऐसा कल्पिजे जो अनुमानु। तो वातीवरी पवनु। गिंवसितां न दिसे ॥४५॥ बुद्धीची *
 * पुळिका विरे। परिमळु घ्राणीं उरे। तोही शक्तीसवें संचरे। मध्यमेमाजी ॥४६॥ तंव वरिलेकडोनि *
 * ढाळें। चंद्रामृताचें तळें। कानवडोनि मिळे। शक्तिमुखीं ॥४७॥ तेणें नातकें रस भरे। तो सर्वांगामार्जीं *
 * संचरे। जेथिंचा तेथ मुरे। प्राणपवनु ॥४८॥ तातलिये मुसे। मेण निघोनि जाय जैसैं। कोंदली राहे रसैं। *
 * वोतलेनि ॥४९॥ तैसैं पिंडाचेनि आकारें। ते कळाचि कां अवतरे। वरी त्वचेचेनि पदरें। पांगुरली असे *
 * ॥२५०॥ जैसी आभाळाची बुंथी। करुनि राहे गभस्ती। मग फिटलिया दीप्ति। धरुं नये ॥५१॥ तैसा *
 * आहाचवरि कोरडा। त्वचेचा असे पातवडा। तो झडोनि जाय कोंडा। जैसा होय ॥५२॥ मग काश्मीराचे *
 * स्वयंभ। कां रत्नबीजा निघाले कोंभ। अवयवकांतीची भांब। तैसी दिसे ॥५३॥ नातरी संध्यारागींचे *
 * रंग। काढूनि वळिलें तें आंग। कीं अंतर्ज्योतीचें लिंग। निर्वाळिलें ॥५४॥ कुंकुमाचें भरींवा। सिद्धरसाचें *

* वोतींवा। मज पाहतां सावेवा। शांतिचि ते ॥५५॥ तें आनंदचित्रींचे लेपा। नातरी महासुखाचें रूपा। कीं *
 * संतोषतरुचें रोपा। थांवलें जैसैं ॥५६॥ तो कनकचंपकाचा कळा। कीं अमृताचा पुतळा। नाना *
 * सासिनला मळा। कोवळिकेचा ॥५७॥ हो कां जे शारदियेचिये वोले। चंद्रबिंब पाल्हेलें। कां तेजचि *
 * मूर्त बैसलें। आसनावरी ॥५८॥ तैसैं शरीर होये। जे वेळीं कुंडलिनी चंद्र पिये। मग देहाकृती बिहे। *
 * कृतांतु गा ॥५९॥ वृद्धाप्य तरी बहुडे। तारुण्याची गांठी विघडे। लोपली उघडे। बाळदशा ॥२६०॥ *
 * वयसा तरी येतुलेवरी। एन्हवीं बळाचा बळार्थु करी। धैर्याची थोरी। निरुपम ॥६१॥ कनकद्रुमाचां *
 * पालवीं। रत्नकळिका नित्य नवी। नखें तैसीं बरवीं। नवीं निघती ॥६२॥ दांतही आन होती। परि *
 * अपाडें सानेजती। जैसीं दुबाही बैसे पांती। हिरेयांची ॥६३॥ माणिकुलियांचिया कणिया। सावियाचि *
 * अणुमानिया। तैसिया सर्वांगीं उधवती आर्णिया। रोमांचिया ॥६४॥ करचरणतळें। जैसीं कां रातोत्पलें। *
 * पाखाळीं होती डोळे। काय सांगों ॥६५॥ निडाराचेनि कोंदाटें। मोतिये नावरती संपुटें। मग शिवणी *
 * जैशी उतटे। शुक्तिपल्लवांची ॥६६॥ तैशी पातियांचिये कवळिये न समाये। दिठी जाकळोनि निघों *
 * पाहे। आधिलीचि परी होये। गगना कळिती ॥६७॥ आइकें देह होय सोनियाचें। परि लाघव ये वायूचें। *
 * जे आप आणि पृथ्वीचे। अंशु नाही ॥६८॥ मग समुद्रापैलाडी देखे। स्वर्गीचा आलोचु आइके। *
 * मनोगत वोळखे। मुंगियेचें ॥६९॥ पवनाचा वारिका वळघे। चाले तरी उदकीं पाऊल न लागे। येणें *
 * येणें प्रसंगें। येती बहुता सिद्धि ॥२७०॥ आइकें प्राणाचा हात धरुनी। गगनाची पाउटी करुनी। *

* मध्यमेचेनि दादरेहूनी। हृदया आली ॥७१॥ ते कुंडलिनी जगदंबा। जे चैतन्यचक्रवर्तीची शोभा। *
 * जिया विश्वबीजाचिया कोंभा। साउली केली ॥७२॥ जे शून्यलिंगाची पिंडी। जें परमात्मया शिवाची *
 * करंडी। जे प्राणाची उघडी। जन्मभूमी ॥७३॥ हें असो ते कुंडली। हृदयाआंतु आली। तंव अनाहताचां *
 * बोलीं। चावळे ते ॥७४॥ शक्तीचिया आंगा लागलें। बुद्धीचें चैतन्य होतें आलें। तें तेणें आइलें। *
 * अळुमाळु ॥७५॥ घोषाचां कुंडीं। नादचित्रांचीं रूपडीं। प्रणवाचिया मोडी। रेखिलीं ऐसीं ॥७६॥ हेंचि *
 * कल्पावें तरी जाणिजे। परी आतां कल्पितें कैचें आणिजे। परी नेणों काय गाजे। तिये ठायीं ॥७७॥ *
 * विसरोनि गेलों अर्जुना। जंव नाशु नाहीं पवना। तंव वाचा आथी गगना। म्हणऊनि घुमे ॥७८॥ तया *
 * अनाहताचेनि मेघें। मग आकाश दुमदुमों लागे। तंव ब्रह्मस्थानीचें बेगें। फिटलें सहजें ॥७९॥ आइकें *
 * कमळगर्भाकारें। जें महदाकाश दुसरें। जेथ चैतन्यें आधातुरें। करुनि आर्सिजे ॥८०॥ तया हृदयाचां *
 * परिवरीं। कुंडलिनिया परमेश्वरी। तेजाची शिदोरी। विनियोगिली ॥८१॥ बुद्धीचेनि शाकें। हातबोनें *
 * निकें। द्वैत जेथ न देखे। तैसें केलें ॥८२॥ ऐसी निजकांती हारविली। मग प्राणुचि केवळ जाहाली। *
 * ते वेळीं कैसी गमली। म्हणावी पां ॥८३॥ हो कां जे पवनाची पुतळी। पांघुरली होती सोनेसळी। ते *
 * फेडुनियां वेगळी। ठेविली तिया ॥८४॥ नातरी वारयाचेनि आंगें झगटली। दीपाची दिठी निमटली। *
 * कां लखलखोनि हारपली। वीजु गगनीं ॥८५॥ तैशी हृदयकमळवे-हीं। दिसे सोनियाची जैशी सरी। *

* नातरी प्रकाशजळाची झरी। वाहत आली ॥८६॥ मग तिये हृदयभूमी पोकळे। जिराली कां एके वेळे। *
 * तैसें शक्तीचें रूप मावळे। शक्तीचिमाजी ॥८७॥ तेव्हां तरी शक्तीचि म्हणिजे। ए-हवीं तो प्राणु *
 * केवळ जाणिजे। आतां नाद बिंदु नेणिजे। कला ज्योती ॥८८॥ मनाचा हन मारु। कां पवनाचा धरु। *
 * ध्यानाचा आदरु। नाहीं परी ॥८९॥ हे कल्पना घे सांडी। ते नाहीं इये परवडी। हें महाभूतांची फुडी। *
 * आटणी देखा ॥९०॥ पिंडें पिंडाचा ग्रासु। तो हा नाथसंकेतींचा दंशु। परि दाऊनि गेला उद्देशु। *
 * महाविष्णु ॥९१॥ तया ध्वनिताचें केणें सोडुनी। यथार्थाची घडी झाडुनी। उपलविली म्यां जाणुनी। *
 * ग्राहीक श्रोते ॥९२॥ ऐकें शक्तीचें तेज लोपे। तेथ देहींचें रूप हारपे। मग तो डोळियांचि माजि लपे। *
 * जगाचिया ॥९३॥ ए-हवीं आधिलाचि ऐसें। सावयव तरी असे। परी वायूचें कां जैसें। वळिलें होय *
 * ॥९४॥ नातरी कर्दळीचा गाभा। बुंथी सांडोनी उभा। कां अवयवचि नभा। निवडला तो ॥९५॥ तैसें *
 * होय शरीर। तें तें म्हणिजे खेचर। हें पद होतां चमत्कार। पिंडजनीं ॥९६॥ देखें साधकु निघोनि *
 * जाये। मागां पाउलांची वोळ राहे। तेथ ठायीं ठायीं होये। हे आर्णिमादिक ॥९७॥ परि तेणें काय काज *
 * आपणपयां। अवधारीं ऐसा धनंजया। लोप आथी भूतत्रया। देहींचा देहीं ॥९८॥ पृथ्वीतें आप विरवी। *
 * आपातें तेज जिरवी। तेजातें पवनु हरवी। हृदयामार्जी ॥९९॥ पाठीं आपण एकला उरे। परि *
 * शरीराचेनि अनुकारें। मग तोही निगे अंतरें। गगना मिळे ॥१००॥ ते वेळीं कुंडलिनी हे भाष जाये। *
 * मारुत ऐसें नाम होये। परि शक्तिपण तें आहे। जंव न मिळे शिवीं ॥१०१॥ मग जालंधर सांडी। *

ककारांत फोडी। गगनाचिये पाहाडीं। पैठी होय ॥२॥ ते ॐकाराचिये पाठी। पाय देत उठाउठी।
पश्यंतीचिये पाउठी। मागां घाली ॥३॥ पुढां तन्मात्रा अर्धवेरी। आकाशाचां अंतरीं। भरती गमे
सागरीं। सरिता जैशी ॥४॥

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः। शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥१५॥

मग ब्रह्मरंध्रीं स्थिरावोनी। सोहंभावाचिया बाह्या पसरुनी। परमात्मलिंगा धांवोनी। आंगा घडे
॥५॥ तंव महाभूतांची जवनिक फिटे। मग दोहींसि होय झटें। तेथ गगनासकट आटे। समरसीं तिये
॥६॥ पैं मेघाचेनि मुखीं निवडला। समुद्र कां वोघीं पडिला। तो मागुता जैसा आला। आपणपेयां
॥७॥ तेवीं पिंडाचेनि मिषें। पदीं पद प्रवेशे। तें एकत्व होय तैसें। पंडुकुमरा ॥८॥ आतां दुजें हन होतें।
कीं एकचि हें आइतें। ऐशिये विवंचनेपुरतें। उरेचिना ॥९॥ गगनीं गगन लया जाये। ऐसें जें कांहीं
आहे। तें अनुभवं जो होये। तो होऊनि ठाके ॥३१०॥ म्हणोनि तेथिंची मातु। न चढेचि बोलाचा
हातु। जेणें संवादाचिया गांवाआंतु। पैठी कीजे ॥११॥ अर्जुना एन्हवीं तरी। इया आर्भिप्रायाचा जे गर्व
धरी। ते पाहें पां वैखरी। दुरी ठेली ॥१२॥ भूलता मागलीकडे। मकराचेंचि आंग न मांडे। सडेया प्राणा
सांकडें। गगना येतां ॥१३॥ पाठा तेथेंचि तो भासळला। तंव शब्दाचा दिवो मावळला। मग तयाहि
वरी आटु भविन्नला। आकाशाचा ॥१४॥ आतां महाशून्याचिया डोहीं। जेथ गगनासीचि ठावो नाहीं।

तेथ तागा लागेल काई। बोलाचा या ॥१५॥ म्हणूनि आखरामाजि सांपडे। कीं कानावरी जोडे। हें
तैसें नव्हे फुडें। त्रिशुद्धी गा ॥१६॥ जें कहीं दैवें। अनुभविलें फावे। तें आपणचि हें ठाकावें। होऊनियां
॥१७॥ पुढती जाणणें तें नाहींचि। म्हणोनि असो किती हेंचि। बोलावें आतां वायांचि। धनुर्धरा
॥१८॥ ऐसें शब्दजात माघौतें सरे। तेथ संकल्पाचें आयुष्य पुरे। वाराही जेथ न शिरे। विचाराचा
॥१९॥ जें उन्मनियेचें लावण्या। जें तुर्येचें तारुण्या। अनादि जें अगण्या। परमतत्त्व ॥३२०॥ जें
आकाराचा प्रांतु। जें मोक्षाचा एकांतु। जेथ आदि आणि अंतु। विरोनी गेले ॥२१॥ जें विश्वाचें मूळ।
जें योगद्रुमाचें फळ। जें आनंदाचें केवळ। चैतन्य गा ॥२२॥ जें महाभूतांचें बीज। जें महातेजाचें तेज।
एवं पार्था जें निज। स्वरूप माझें ॥२३॥ ते हे चतुर्भुज कोंभेली। जयाची शोभा रूपा आली। देखोनि
नास्तिकीं नोकिलीं। भक्तवृंदें ॥२४॥ ते आर्निर्वाच्य महासुख। पैं आपणचि जाहले ते पुरुष। जयांचे
कां निष्कर्ष। प्राप्तिवेरीं ॥२५॥ आम्हीं साधन हें जें सांगितलें। तेंचि शरीर जिहीं केलें। ते आमुचेनि
पाडें आले। निर्वाळलेया ॥२६॥ परब्रह्माचेनि रसें। देहाकृतीचिये मुसे। वोतींव जाहले तैसे। दिसती
आंगें ॥२७॥ जरि हे प्रतीति हन अंतरीं फांके। तरी विश्वचि हें अवघें झांके। तंव अर्जुन म्हणे निकें।
साचचि जी हें ॥२८॥ कां जे आपण आतां देवो। हा बोलिले जो उपावो। तो प्राप्तीचा ठावो। म्हणोनि
घडे ॥२९॥ इये अभ्यासीं जे दृढ होती। ते भरवसेंनि ब्रह्मत्वा येती। हें सांगतियाचि रीती। कळलें
मज ॥३३०॥ देवा गोठीचि हे ऐकतां। बोधु उपजतसे चित्ता। मा अनुभवं तल्लीनता। नव्हेल केवीं

* ॥३१॥ म्हणऊनि एथ कांहीं। अनारिसें नाहीं। परी नावभरी चित्त देई। बोला एका ॥३२॥ आतां *
 * कृष्णा तुवां सांगितला योगु। तो मना तरी आला चांगु। परि न शके करूं पांगु। योग्यतेचा ॥३३॥ *
 * सहजें आंगिक जेतुली आहे। तेतुलियाची जरी सिद्धि जाये। तरी हाचि मार्गु सुखोपायें। अभ्यासीन *
 * ॥३४॥ नातरी देवो जैसें सांगतील। तैसें आपणपां जरी न ठकेल। तरी योग्यतेवीण होईल। तेंचि पुसों *
 * ॥३५॥ जीवींचिये ऐसी धारण। म्हणोनि पुसावया जाहलें कारण। मग म्हणे तरी आपण। चित्त देइजो *
 * ॥३६॥ हां हो जी अवधारिलें। हें जें साधन तुम्हीं निरूपिलें। तें आवडतयाहि अभ्यासिलें। फावों शके *
 * ॥३७॥ कीं योग्यतेवीण नाहीं। ऐसें हन आहे कांहीं। तेथ कृष्ण म्हणती तरी काई। धनुर्धरा ॥३८॥ *
 * हें काज कीर निर्वाण। परि आणिकही जें कांहीं साधारण। तेंही आर्थिकाराचे वोडवेविण। काय सिद्धि *
 * जाय ॥३९॥ पै योग्यता जे म्हणिजे। ते प्राप्तीची अधीन जाणिजे। कां जें योग्य होउनि कीजे। तें *
 * आरंभीं फळे ॥३४०॥ तरी तैसी एथ कांहीं। सावियाचि केणी नाहीं। आणि योग्यांची काई। खाणी *
 * असे ॥४१॥ नावेक विरक्तु। जाहला देहधर्मी नियतु। तरि तोचि नव्हे व्यवस्थितु। आर्थिकारिया *
 * ॥४२॥ येतुलालिये आयणीमाजि येवढें। योग्यपण तूंतेंही जोडे। ऐसें प्रसंगें सांकडें। फेडिलें तयाचें *
 * ॥४३॥ मग म्हणे गा पार्था। ते हे ऐसी व्यवस्था। आर्नियतासि सर्वथा। योग्यता नाहीं ॥४४॥ *
 * नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः। न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥१६॥ *

* जो रसनेंद्रियाचा अंकिला। कां निद्रेसी जीवें विकला। तो नाहीं एथ म्हणितला। आर्थिकारिया *
 * ॥४५॥ अथवा आग्रहाचिये बांदोडी। क्षुधा तृषा कोंडी। आहारातें तोडी। मारुनियां ॥४६॥ निद्रेचिया *
 * वाटा नवचे। ऐसा दृढिवेचेनि अवतरणें नाचे। तें शरीरचि नव्हे तयाचें। मा योगु कवणाचा ॥४७॥ *
 * म्हणोनि आर्तिशयें विषय सेवा। तैसा विरोध न व्हावा। कां सर्वथा निरोधु करावा। हेंही नको ॥४८॥ *

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥१७॥

* आहार तरी सेविजे। परी युक्तीचेनि मापें मविजे। क्रियाजात आचरिजे। तयाचि स्थिती ॥४९॥ *
 * मपितला बोली बोलिजे। मितलां पाउलीं चालिजे। निद्रेही मानु दीजे। अवसरें एके ॥३५०॥ जागणें *
 * जरी जाहलें। तरी व्हावें तें मितलें। येतुलेनि धातुसाम्य संचलें। असेल सुखें ॥५१॥ ऐसें युक्तीचेनि *
 * हातें। जें इंद्रियां वोपिजे भातें। तें संतोषासी वाढतें। मनचि करी ॥५२॥ बाहेर युक्तीची मुद्रा पडे। *
 * तंव आंत सुख वाढे। तेथें सहजेंचि योगु घडे। नाभ्यासितां ॥५३॥ जैसें भाग्याचिये भडसें। उद्यमाचेनि *
 * मिसें। मग समृद्धिजात आपैसें। घर रिघे ॥५४॥ *

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते। निःस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ॥१८॥

* तैसा युक्तिमंतु कौतुकें। अभ्यासाचिया मोहरा ठाके। आणि आत्मसिद्धीचि पिके। अनुभुव *
 * तयाचा ॥५५॥ म्हणोनि युक्ति हे पांडवा। घडे जया सदैवा। तो अपवर्गींचिये राणिवा। अळंकरिजे *
 * ॥५६॥ युक्ति योगाचें आंग पावे। ऐसें प्रयाग होय जें बरवें। तेथ क्षेत्रसंन्यासें स्थिरावें। मानस जयाचें *

॥५७॥

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता। योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः ॥१९॥

तयातें योगयुक्त म्हण। हेंही प्रसंगें जाण। तें दीपाचें उपलक्षण। निर्वातींचिया ॥५८॥ आता तुझें मनोगत जाणोनी। कांहीं एक आम्ही म्हणोनि। तें निकें चित्त देउनी। परिसावें गा ॥५९॥ तूं प्राप्तीची चाड वाहसी। परि अभ्यासीं दक्षु नव्हसी। तें सांग पां काय बिहसी। दुवाडपणा ॥३६०॥ तरी पार्था हें झणें। सायास घेशी हो मनें। वायां बागूल इये दुर्जनें। इंद्रियें करिती ॥६१॥ पाहें पां आयुष्याचा अढळ करी। जें सरतें जीवित वारी। तया औषधातें वैरी। काय जिव्हा न म्हणे ॥६२॥ ऐसें हितासि जें जें निकें। तें सदाचि या इंद्रियां दुखे। एन्हीवीं सोपें योगासारिखें। कांहीं आहे ॥६३॥ म्हणोनि आसनाचिया गाढिका। जो आम्हीं अभ्यासु सांगितला निका। तेणें होईल तरी हो कां। निरोधु यया ॥६४॥

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया। यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति ॥२०॥

एन्हीवीं तरी येणें योगें। जें इंद्रियां विंदाण लागे। तें चित्त भेटों रिगे। आपणपेयां ॥६५॥ परतोनि पाठिमोरें ठाके। आणि आपणियांतें आपण देखे। देखतखेवो वोळखे। म्हणे तत्त्व तें मी ॥६६॥

सुखमात्यन्तिकं यत्तद् बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्। वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥२१॥

तिये ओळखीचिसरिसें। सुखाचियां साम्राज्यीं बैसे। चित्तपण समरसें। विरोनि जाय ॥६७॥ जयापरतें आणिक नाहीं। जयातें इंद्रियें नेणती कहीं। तें आपणचि आपुलां ठायीं। होऊनि ठाके ॥६८॥

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः। यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते ॥२२॥

मग मेरुपासूनि थोरें। देह दुःखाचेनि डोंगरें। दाटिजो पां परि भारें। चित्त न दटे ॥६९॥ कां शस्त्रवरी तोडिलिया। देह आगीमार्जी पडलिया। चित्त महासुखीं पडलिया। चेतोचि नये ॥३७०॥ ऐसें आपणपां रिगोनि ठाये। मग देहाची वास न पाहे। आणिकचि सुख होऊनि जाये। म्हणूनि विसरे ॥७१॥

तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्। स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा ॥२३॥

जया सुखाचिया गोडी। मन आर्तीची सेचि सोडी। संसाराचिया तोंडीं। गुंतलें जे ॥७२॥ जें योगाची बरवा। संतोषाची राणीवा। ज्ञानाची जाणीवा। जयालागीं ॥७३॥ तें अभ्यासिलेनि योगें। सावेव देखावें लागे। देखिलें तरी आंगें। होइजेल गा ॥७४॥

संकल्पप्रभवान् कामास्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः। मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः ॥२४॥

परि तोचि योगु बापा। एके परी आहे सोपा। जरी पुत्रशोकु संकल्पा। दाखविजे ॥७५॥ हा विषयांतें निमालिया आइके। इंद्रियें नेमाचिया धारणीं देखे। तरी हियें घालूनि मुके। जीवितासी

॥७६॥ ऐसं वैराग्य हें करी। तरी संकल्पाची सरे वारी। सुखे धृतीचिया धवळारीं। बुद्धि नांदे ॥७७॥

शनैः शनैरुपरमेद् बुद्ध्या धृतिगृहीतया। आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किंचिदपि चिन्तयेत् ॥२५॥

बुद्धी धैर्या होय वसौटा। तरी मनातें अनुभवाचिया वाटा। हळु हळु करी प्रतिष्ठा। आत्मभुवनीं
॥७८॥ याही एके परी। प्राप्ति आहे विचारीं। हें न ठके तरी। सोपारी आणि एके ॥७९॥

यतो यतो निश्चलति मनश्चलमस्थिरम्। ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥२६॥

आतां नियमुचि हा एकला। जीवें करावा आपुला। जैसा कृतनिश्चयाचिया बोला। बाहेरा नोहे
॥३८०॥ जरी येतुलेनि चित्त स्थिरावे। तरी काजा आलें स्वभावं। न राहे तरी घालावं। मोकलुनी
॥८१॥ मग मोकलिलें जेथ जेथ जाईल। तेथूनि नियमूचि घेऊनि येईल। ऐसेनि स्थैर्याची होईल।
सवे यया ॥८२॥

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्। उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥२७॥

पाठीं केतुलेनि एके वेळे। तया स्थैर्याचेनि मेळें। आत्मस्वरूपाजवळें। येईल सहजें ॥८३॥
तयातें देखोनि आंगा घडेल। तेथ अद्वैतीं द्वैत बुडेल। आणि ऐक्यतेजें उघडेल। त्रैलोक्य हें ॥८४॥
आकाशीं दिसे दुसरें। तें अभ्र जें विरे। तें गगनचि कां भरे। विश्व जैसं ॥८५॥ तैसं चित्त लया जाये।
आणि चैतन्यचि आघवें होये। ऐसी प्राप्ति सुखोपायें। आहे येणें ॥८६॥

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः। सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते ॥२८॥

या सोपिया योगस्थिती। उकलु देखिला गा बहुतीं। संकल्पाचिया संपत्ती। रुसोनियां ॥८७॥ ते
सुखाचेनि सांगातें। आले परब्रह्मा आंतौतें। तेथ लवण जैसं जळातें। सांडूं नेणे ॥८८॥ तैसं होय तिये
मेळीं। मग सामरस्याचिया राउळीं। महासुखाची दिवाळी। जगेंसि दिसे ॥८९॥ ऐसं आपले पायवरी।
चालिजे आपुले पाठी वरी। हें पार्था नागवे तरी। आन ऐकें ॥९०॥

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि। ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥२९॥

तरि मी तंव सकळ देहीं। असें एथ विचारु नाहीं। आणि तैसेंचि माझां ठायीं। सकळ असे
॥९१॥ हें ऐसेंचि संचलें। परस्परें मिसळलें। बुद्धी घेपे एतुलें। होआवें गा ॥९२॥

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति। तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥३०॥

एन्हवीं तरी अर्जुना। जो एकवटलिया भावना। सर्वभूतीं आर्भिन्ना। मातें भजे ॥९३॥ भूतांचेनि
अनेकपणे। अनेक नोहे अंतःकरणें। केवल एकत्वचि माझें जाणे। सर्वत्र जो ॥९४॥

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः। सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥३१॥

मग तो एक हा मियां। बोलतां दिसतसे वायां। एन्हवीं न बोलिजे तरि धनंजया। तो मीचि आहे
॥९५॥ दीपा आणि प्रकाशा। एकवंकीचा पाडु जैसा। तो माझां ठायीं तैसा। मी तयामार्जी ॥९६॥
जैसा उदकाचेनि आयुष्यें रसु। कां गगनाचेनि मानें अवकाशु। तैसा माझेनि रूपें रूपसु। पुरुषु तो गा

* ॥९७॥ जेणें ऐक्याचिये दिठी। सर्वत्र मातेंचि किरीटी। देखिला जैसा पटीं। तंतु एकु ॥९८॥ कां *
 * स्वरूपें तरी बहुतें आहाती। परी तैसीं सोनीं बहुवें न होती। ऐसी ऐक्याचळाची स्थिती। केली जेणें *
 * ॥९९॥ ना तरीं वृक्षांचीं पानें जेतुलीं। तेतुलीं रोपें नाहीं लाविलीं। ऐसी अद्वैतदिवसें पाहली। रात्री *
 * जया ॥४००॥ तो पंचात्मकी सांपडे। मग सांग पां कैसेनि अडे। जो प्रतीतीचेनि पाडें। मजसीं तुके *
 * ॥१॥ माझें व्यापकपण आघवें। गवसलें तयाचेनि अनुभवं। तरी न म्हणतां स्वभावं। व्यापकु जाहला *
 * ॥२॥ आतां शरीरीं तरी आहे। परी शरीराचा तो नोहे। ऐसें बोलवरी होये। तें करुं ये काई ॥३॥ *

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन। सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥३२॥

* म्हणोनि असो तें विशेषें। आपणपयासारिखें। जो चराचर देखे। अखंडित ॥४॥ सुखदुःखादि *
 * वर्मे। कां शुभाशुभें कर्मे। दोनी ऐसीं मनोधर्मे। नेणेचि जो ॥५॥ हे समविषम भावा। आणिकही विचित्र *
 * जें सर्वा। तें मानी जैसे अवयवा। आपुले होती ॥६॥ हें एकैक काय सांगावे। जया त्रैलोक्यचि आघवें। *
 * मी ऐसें स्वभावं। बोधा आलें ॥७॥ तयाही देह एकु कीर आथी। लौकिकीं सुखदुःखी तयातें म्हणती। *
 * परी आम्हांतें ऐसीचि प्रतीती। परब्रह्मचि हा ॥८॥ म्हणोनि आपणपां विश्व देखिजे। आणि आपण *
 * विश्व होईजे। ऐसें साम्यचि एक उपासिजे। पांडवा गा ॥९॥ हें तूतें बहुतीं प्रसंगीं। आम्ही म्हणों *
 * याचिलागीं। जे साम्यापरौती जगीं। प्राप्ति नाहीं ॥४१०॥ *

अर्जुन उवाच :

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन। एतस्याहं न पश्यामि चञ्चलत्वात् स्थितिं स्थिराम् ॥३३॥

* अर्जुन म्हणे देवा। तुम्ही सांगा कीर आमुचिया कणवा। परी न पुरों जी स्वभावा। मनाचिया *
 * ॥११॥ हें मन कैसें केवडें। ऐसें पाहों म्हणों तरी न सांपडे। एन्हवीं राहाटावया थोडें। त्रैलोक्य यया *
 * ॥१२॥ म्हणोनि ऐसें कैसें घडेल। जे मर्कट समाधी येईल। कां राहे म्हणतलिया राहेल। महावातु *
 * ॥१३॥ *

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढम्। तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥३४॥

* जें बुद्धीतें सळी। निश्चयातें टाळी। धैर्येसी हातफळी। मिळऊनि जाय ॥१४॥ जें विवेकातें *
 * भुलवी। संतोषासी चाड लावी। बैसिजे तरी हिंडवी। दाही दिशा ॥१५॥ जें निरोधलें घे उवावो। जया *
 * संयमुचि होय सावावो। तें मन आपुला स्वभावो। सांडील काई ॥१६॥ म्हणोनि मन एक निश्चळ *
 * राहेल। मग आम्हांसि साम्य येईल। हें विशेषेंहि न घडेल। तयालागीं ॥१७॥ *

श्रीभगवानुवाच : असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्। अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥३५॥

* तंव कृष्ण म्हणती साचचि। बोलत आहासि तें तैसेंचि। यया मनाचा कीर चपळचि। स्वभावो गा *
 * ॥१८॥ परि वैराग्याचेनि आधारें। जरि लाविलें अभ्यासाचिये मोहरे। तरि केतुलेनि एके अवसरें। *
 * स्थिरावेल ॥१९॥ कां जें यया मनाचें एक निकें। जे हें देखिले गोडीचिया ठाया सोके। म्हणोनि *

अनुभवसुखचि कवतिकें। दावीत जाइजे ॥४२०॥

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः। वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ॥३६॥

एन्हवीं विरक्ति जयांसि नाहीं। जे अभ्यासीं न रिघती कहीं। तयां नाकळे हें आम्हीही। न मनूं कायी ॥२१॥ परि यमनियमांचिया वाटा न वचिजे। कहीं वैराग्याची से न करिजे। केवळ विषयजळीं ठाकिजे। बुडी देउनी ॥२२॥ या जालिया मानसा कहीं। युक्तीची कांबी लागली नाहीं। तरी निश्चल होईल काई। कैसेनि सांगें ॥२३॥ म्हणोनि मनाचा निग्राहो होये। ऐसा उपाय जो आहे। तो आरंभीं मग नोहे। कैसा पाहों ॥२४॥ तरी योगसाधन जितुकें। तें अवघेंचि काय लटिकें। परि आपणपयां अभ्यासूं न ठाके। हेंचि म्हणें ॥२५॥ आंगीं योगाचें होय बळ। तरी मन केतुलें चपळ। काय महदादि हें सकळ। आपु नोहे ॥२६॥

अर्जुन उवाच :

अयतिः श्रद्धयोपेतो योगात् चलितमानसः। अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति ॥३७॥

तेथ अर्जुन म्हणे निकें। देवो बोलती तें न चुके। साच योगबळेंसीं न तुके। मनोबळ ॥२७॥ तरि तोचि योगु कैसा केवीं जाणों। आम्ही येतुले दिया मातुही नेणों। म्हणोनि मनातें जी म्हणों। अनावर हें ॥२८॥ हा आतां आघवेया जन्मा। तुझेनि प्रसादें पुरुषोत्तमा। योगपरिचयो आम्हां। जाहला आजी

॥२९॥ परि आणिक एक गोसांविया। मज संशयो असे साविया। तो तूवांचूनि फेडावया। समर्थु नाहीं ॥४३०॥ म्हणोनि सांगें गोविंदा। कवण एकु मोक्षपदा। झोंबत होता श्रद्धा। उपायेंविण ॥३१॥ इंद्रियग्रामोनि निगाला। आस्थेचिया वाटा लागला। आत्मसिद्धीचिया पुढिला। नगरा यावया ॥३२॥

कच्चित् नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति। अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ॥३८॥

तंव आत्मसिद्धि न ठकेचि। आणि मागुतें न येववेचि। ऐसा अस्तु गेला माझारींचि। आयुष्यभानु ॥३३॥ जैसैं अवकाळीं आभाळ। अळुमाळु सपातळ। विपायें आलें केवळा वसे ना वर्षे ॥३४॥

एतत् मे संशयं कृष्ण छेतुमर्हस्यशेषतः। त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते ॥३९॥

तैसीं दोन्ही दुरावलीं। जे प्राप्ति तव अलग ठेली। आणि अप्राप्तिही सांडवली। श्रद्धा तया ॥३५॥ ऐसा वोलांतरला काजीं। जो श्रद्धेचांचि समार्जीं। बुडाला तया हो जी। कवण गति ॥३६॥

श्रीभगवानुवाच :

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते। न हि कल्याणकृत् कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति ॥४०॥

तंव कृष्ण म्हणती पार्था। जया मोक्षसुखीं आस्था। तया मोक्षावांचुनि अन्यथा। गति आहे गा ॥३७॥ परि एतुलेंचि एक घडे। जें माझारीं विसवावें पडे। तेंही परि ऐसेनि सुरवाडें। जो देवां नाहीं ॥३८॥ एन्हवीं अभ्यासाचां उचलतां। पाउलीं जरी चालता। तरि दिवसाआधीं ठाकिता। सोहंसिद्धीतें ॥३९॥ परि तेतुला वेगु नव्हेचि। म्हणऊनि विसावा तरी निकाचि। पाठीं मोक्षु तंव तैसाचि। ठेविला

असे ॥४४०॥

प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः। शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ॥४१॥

ऐकें कवतिक हें कैसें। शतमखा लोक सायासें। ते तो पावे अनायासें। कैवल्यकामु ॥४१॥ मग तेथिंचे जे अमोघ। अलौकिक भोग। भोगितांही सांगा। कांटाळे मन ॥४२॥ हा अंतरायो अवचितां। कां वोढवला भगवंता। दिविभोग भोगितां। अनुतापी नित्य ॥४३॥ पाठीं जन्मे संसारीं। परी सकळ धर्माचिया माहेरीं। लांबा उगवे आगरीं। विभवश्रियेचा ॥४४॥ जयातें नीतिपंथें चालिजे। सत्यधूत बोलिजे। देखावें तें देखिजे। शास्त्रदृष्टी ॥४५॥ वेद तो जागेश्वरु। जया व्यवसाय निजाचारु। सारासारविचारु। मंत्री जयातें ॥४६॥ जयाचां कुळीं चिंता। जाली ईश्वराची पतिव्रता। जयातें गृहदेवता। आदि ऋद्धि ॥४७॥ ऐसी निजपुण्याचिया जोडी। वाढिन्नली सर्वसुखाची कुळवाडी। तिये जन्मे तो सुरवाडी। योगच्युतु ॥४८॥

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्। एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम् ॥४२॥

अथवा ज्ञानाग्निहोत्री। जे परब्रह्मण्य श्रोत्री। महासुखक्षेत्रीं। आदिवंत ॥४९॥ जे सिद्धांताचां सिंहासनीं। राज्य करिती त्रिभुवनीं। जे कूजते कोकिल वनीं। संतोषाचां ॥४५०॥ जे विवेकग्राभिचे मुळीं। बैसले आहाति नित्य फळीं। तया योगियांचां कुळीं। जन्म पावे ॥५१॥

तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्। यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन ॥४३॥

मोटकी देहाकृति उमटे। आणि निजज्ञानाची पांहाट फुटे। सूर्यापुढां प्रगटे। प्रकाशु जैसा ॥५२॥ तैशी दशेची वाट न पाहतां। वयसेचिया गांवा न येतां। बाळपणींच सर्वज्ञता। वरी तयातें ॥५३॥ तिये सिद्धप्रज्ञेचेनि लाभें। मनचि सारस्वतें दुभे। मग सकळ शास्त्रें स्वयंभें। निघती मुखें ॥५४॥ ऐसें जें जन्म। जयालागीं देव सकाम। स्वर्गीं ठेले जप होम। करिती सदा ॥५५॥ अमरीं भाट होईजे। मग मृत्युलोकातें वानिजे। ऐसें जन्म पार्था गा जें। तें तो पावे ॥५६॥

पूर्वाभ्यासेन तेनैव न्हियते ह्यवशोऽपि सः। जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते ॥४४॥

आणि मागील जे सद्बुद्धि। जेथ जीविता जाहाली होती अवधि। मग तेचि पुढती निरवधि। नवी लाहे ॥५७॥ तेथ सदैवा आणि पायाळा। वरि दिव्यांजन होय डोळां। मग देखे जैसी अवलीळा। पाताळधनें ॥५८॥ तैसे दुर्भेद जे आर्भिप्राय। कां गुरुगम्य हन ठाय। तेथ सौरसेंवीण जाय। बुद्धि तयाची ॥५९॥ बळियें इंद्रियें येती मना। मन एकवटे पवना। पवन सहजें गगना। मिळोंचि लागे ॥४६०॥ ऐसें नेणों काय आपैसें। तयातेंचि कीजे अभ्यासें। समाधि घर पुसे। मानसाचें ॥६१॥ जाणिजे योगपीठीचा भैरवु। काय हा आरंभरंभेचा गौरवु। की वैराग्यसिद्धीचा अनुभवु। रूपा आला ॥६२॥ हा संसार उमाणितें मापा। कां अष्टांगसामग्रीचे दीपा। जैसे परिमळेंचि धरिजे रूपा चंदनाचें ॥६३॥ तैसा संतोषाचा काय घडिला। कीं सिद्धभांडारीं हूनि काढिला। दिसे तेणें मानें रुढला।

साधकदशे ॥६४॥ जे वर्षशतांचिया कोडी। जन्मसहस्रांचिया आडी। लंघिता पातला थडी।
 आत्मसिद्धीची ॥६५॥ म्हणोनि साधनजात आघवें। अनुसरे तया स्वभावें। मग आयतिये बैसे
 राणिवे। विवेकाचिये ॥६६॥ पाठीं विचारितया वेगा। तो विवेकुही ठाके मागां। मग आर्विचारणीय तें
 आंगा। घडोनि जाय ॥६७॥ तेथ मनाचें मेहुडें विरे। पवनाचें पवनपण सरे। आपणपां आपण मुरे।
 आकाशही ॥६८॥ प्रणवाचा माथा बुडे। येतुलेनि आर्निर्वाच्य सुख जोडे। म्हणोनि आधींचि बोलु
 बहुडे। तयालागीं ॥६९॥ ऐसी ब्रह्माची स्थिती। जे सकळां गतींसी गती। तया अमूर्ताची मूर्ती।
 होऊनि ठाके ॥४७०॥

प्रयत्नाद् यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः। अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥४५॥

तेणें बहुतीं जन्मीं मागिलीं। विक्षेपांचीं पाणिवळें झाडिलीं। म्हणोनि उपजतखेंवो बुडाली।
 लग्नघटिका ॥७१॥ आणि तद्रूपतेसीं लग्ना लागोनि ठेलें आर्भिन्ना जैसें लोपलें अभ्र गगना होऊनि
 ठाके ॥७२॥ तैसें विश्व जेथ होये। मागौतें जेथ लया जाये। तें विद्यमानेंचि देहें। जाहला तो गा
 ॥७३॥ जया लाभाचिया आशा। करुनि धैर्यबाहूंचा भरंवसा। घालीत षट्कर्मांचा धारसा। कर्मनिष्ठ
 ॥७४॥ कां जिये एकी वस्तूलागीं। बाणोनि ज्ञानाची वज्रांगी। झुंजत प्रपंचेंशीं समरंगीं। ज्ञानिये गा
 ॥७५॥ अथवा निलागें निसरडा। तपोदुर्गाचा आडकडा। झोंबती तपिये चाडा। जयाचिया ॥७६॥

जें भजतियांसी भज्या। याज्ञिकांचें याज्या। एवं जें पूज्या। सकळां सदा ॥७७॥ तेंचि तो आपणा स्वयें
 जाहला निर्वाणा। जें साधकांचे कारणा। सिद्ध तत्त्व ॥७८॥

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।

कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्मात् योगी भवार्जुन ॥४६॥

म्हणोनि कर्मनिष्ठां वंद्यु। तो ज्ञानियांसि वेद्यु। तापसांचा आद्यु। तपोनाथु ॥७९॥ पै
 जीवपरमात्मसंगमा। जयाचें येणें जाहलें मनोधर्मा। तो शरीरीचि परी महिमा। ऐसी पावे ॥४८०॥
 म्हणोनि याकारणें। तूतें मी सदा म्हणें। योगी होय अंतःकरणें। पंडुकुमरा ॥८१॥

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना। श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥४७॥

अगा योगी जो म्हणिजे। तो देवांचा देव जाणिजे। आणि सुखसर्वस्व माझें। चैतन्य तो ॥८२॥
 जया भजता भजन भजावें। हें भक्तिसाधन जें आघवें। तें मीचि जाहलों अनुभवें। अखंडित ॥८३॥
 मग तया आम्हां प्रीतीचें। स्वरूप बोलीं निर्वचे। ऐसें नव्हे गा तो साचें। सुभद्रापती ॥८४॥ तया
 एकवटलिया प्रेमा। जरी पाडें पाहिजे उपमा। तरी मी देह तो आत्मा। हेचि होय ॥८५॥ ऐसें
 भक्तचकोरचंद्रें। तेथ त्रिभुवनैकनरेंद्रें। बोलिलें गुणसमुद्रें। संजयो म्हणे ॥८६॥ तेथ आदिलापासूनि
 पार्था। ऐकिजे ऐसीचि अवस्था। दुणावली हें यदुनाथा। पावों सरलें ॥८७॥ कीं सावियाचि मनीं
 तोषला। जे बोला आरिसा जोडला। तेणें हरिखें आतां उपलवला। निरूपील ॥८८॥ तो प्रसंगु आहे

* पुढां। जेथ शांतु दिसेल उघडा। तो पालविजेल मुडा। प्रमेयबीजांचा ॥८९॥ जे सात्त्विकाचेनि वडपें।
* गेलें आध्यात्मिक खरपें। सहजें निरोळले वाफे। चतुरचित्ताचे ॥४९०॥ वरी अवधानाचा वाफसा।
* लाधला सोनयाऐसा। म्हणोनि पेरावया धिंवसा। निवृत्तीसी ॥९१॥ ज्ञानदेव म्हणे मी चाडें। सद्गुरूंनीं
* केला कोडें। माथां हात ठेविला तें फुडें। बीचि वाडलें ॥९२॥ म्हणऊनि येणें मुखें जें निगे। तें संतांचां
* हृदयीं साचचि लागे। हें असो सांगें श्रीरंगें। बोलिलें जें ॥९३॥ परी तें मनाच्या कानीं ऐकावें। बोल
* बुद्धीच्या डोळां देखावे। हे साटोवार्ति घ्यावे। चित्ताचिया ॥९४॥ अवधानाचेनि हातें। नेयावे हृदयाआंतौते।
* हे रिझवितील आयणीतें। सज्जनांचिये ॥९५॥ हे स्वहितातें निवविती। परिणामातें जीवविती। सुखाची
* वाहविती। लाखोली जीवा ॥९६॥ आतां अर्जुनेंसी मुकुंदें। नागर बोलिजेल विनोदें। तें वोंवियेचेनि
* प्रबंधें। सांगेन मी ॥४९७॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे आत्मसंयमयोगो नाम षष्ठोऽध्यायः

(श्लोक ४७; ओव्या ४९७)

श्रीसच्चिदानन्दार्पणमस्तु।

॥श्री॥

॥ज्ञानेश्वरी॥

अध्याय सातवा

श्रीभगवानुवाच : मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन् मदाश्रयः। असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि
तत् छृणु ॥१॥

आइकां मग तो अनंतु। पार्थतिं असे म्हणतु। पै गा तूं योगयुक्तु। जालासि आतां ॥१॥ मज
समग्रातें जाणसी ऐसें। आपुलिया तळहातींचें रत्न जैसें। तुज ज्ञान सांगेन तैसें। विज्ञानेंसीं ॥२॥
ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः। यज् ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यत् ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥२॥

एथ विज्ञानें काय करावें। ऐसें घेसी जरी मनोभावे। तरी पै आधी जाणावें। तेंचि लागे ॥३॥ मग
ज्ञानाचिये वेळे। झांकती जाणिवेचे डोळे। जैसी तीरीं नाव न ढळे। टेकली सांती ॥४॥ तैसी जाणीव
जेथ न रिघे। विचार मागुता पाउलीं निघे। तर्कु आयणी नेघे। आंगीं जयाचां ॥५॥ अर्जुना तया नांव

ज्ञान। येर प्रपंचु हें विज्ञान। तेथ सत्यबुद्धि तें अज्ञान। हेंही जाण ॥६॥ आतां अज्ञान अवघें हरपे।
विज्ञान निःशेष करपे। आणि ज्ञान तें स्वरूपें। होऊनि जाइजे ॥७॥ ऐसें वर्म जें गूढ। तें कीजेल
वाक्यारूढ। जेणें थोडेन पुरे कोडा। बहुत मनींचें ॥८॥ जेणें सांगतयाचें बोलणें खुंटे। ऐकतयाचें
व्यसन तुटे। हें जाणणें सानें मोटें। उरों नेदी ॥९॥

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद् यतति सिद्धये। यततामपि सिद्धानां कश्चिन् मां वेत्ति तत्त्वतः ॥३॥

पै गा मनुष्यांचिया सहस्रशां। माजि विपाइलेयाची येथ धिंवसा। तैसें या धिंवसेकरां बहुवसां।
माजि विरळा जाणे ॥१०॥ जैसा भरलेया त्रिभुवना। आंतु एकएकु चांगु अर्जुना। निवडूनि कीजे
सेना। लक्षवरी ॥११॥ कीं तयाही पाटीं। जे वेळीं लोह मांसातें घांटी। ते वेळीं विजयश्रियेचां पाटीं।
एकुचि बैसे ॥१२॥ तैसे आस्थेचां महापुरीं। रिघताती कोटिवरी। परी प्राप्तीच्या पैलतीरीं। विपाइला
निगे ॥१३॥ म्हणऊनि सामान्य गा नोहे। हें सांगतां वडिल गोठि गा आहे। परी तें बोलों येईल पाहें।
आतां प्रस्तुत ऐकें ॥१४॥ तरी अवधारीं गा धनंजया। हे महदादिक माझी माया। जैसी प्रतिबिंबे
छाया। निजांगाची ॥१५॥

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च। अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥४॥

आणि इयेतें प्रकृति म्हणिजे। जे अष्टधा भिन्न जाणिजे। लोकत्रय निपजे। इयेस्तव ॥१६॥ हे
अष्टधा भिन्न कैसी। ऐसा ध्वनि धरिसी जरी मानसीं। तरी तेचि गा आतां परियेसीं। विवंचना ॥ १७॥

आप तेज गगना मही मारुत मना बुद्धि अहंकार हे भिन्ना आठै भाग ॥१८॥

अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्। जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥५॥

आणि या आठांची जे साम्यावस्था। ते माझी परम प्रकृति पार्था। तिये नाम व्यवस्था। जीवु ऐसी ॥१९॥ जे जडातें जीववी। चेतनेतें चेतवी। मनाकरवीं मानवी। शोक मोहो ॥२०॥ पै बुद्धीचां अंगीं जाणणें। तें जियेचिये जवळिकेचें करणें। जिया अहंकाराचेनि विंदाणें। जगचि धरिजे ॥२१॥

एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय। अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥६॥

ते सूक्ष्म प्रकृति कोडें। जें स्थूलाचिया आंगा घडे। तें भूतसृष्टीची पडे। टांकसाळ ॥२२॥ चतुर्विधु ठसा। उमटों लागे आपैसा। मोला तरी सरिसा। परि थरचि आनान ॥२३॥ होती चौऱ्यांशीं लक्ष थरा। येरा मित्ती नेणिजे भांडारा। भरे आदिशून्याचा गाभारा। नाणेयांसी ॥२४॥ ऐसे एकतुके पांचभौतिका। पडती बहुवस टांका। मग तिये समृद्धीचे लेखा। प्रकृतीचि धरी ॥२५॥ जे आंखूनि नाणें विस्तारी। पाठी तयांची आटणी करी। माजी कर्माकर्माचिया व्यवहारीं। प्रवर्तु दावी ॥२६॥ हें रूपक परी असो। सांगों उघड जैसें परियेसों। तरी नामरूपाचा आर्तिसो। प्रकृतीच कीजे ॥२७॥ आणि प्रकृति तंव माझ्यां ठायीं। बिंबे येथ आन नाहीं। म्हणोनि आदि मध्य अवसान पाहीं। जगासि मी ॥२८॥

मत्तः परतरं नान्यत् किंचिदस्ति धनंजया मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥७॥

हें रोहिणीचें जळ। तयाचें पाहतां येइजे मूळ। तें रश्मि नव्हती केवळ। होय तो भानु ॥२९॥ तयाचिपरी किरीटी। इया प्रकृती जालिये सृष्टी। जें उपसंहरुनि कीजेल ठी। तें मीचि आहे ॥३०॥ ऐसें होय दिसे न दिसे। हें मजचि माजिवडे असे। मियां विश्व धरिजे जैसें। सूत्रें मणि ॥३१॥ सुवर्णाचे मणी केले। ते सोनियाचे सुतीं वोविले। तैसें म्यां जग धरिलें। सबाह्याभ्यंतरीं ॥३२॥

रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभास्मि शशिसूर्ययोः। प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥८॥

म्हणोनि उदकीं रसु। कां पवनीं जो स्पर्शु। शशिसूर्यीं जो प्रकाशु। तो मीचि जाण ॥३३॥ तैसाचि नैसर्गिकु शुद्धु। मी पृथ्वीचां ठायीं गंधु। गगनीं मी शब्दु। वेदीं प्रणवु ॥३४॥ नराचां ठायीं नरत्वा। जें अहंभाविये सत्त्वा। तें पौरुष मी हें तत्त्वा। बोलिजत असे ॥३५॥

पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ। जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ॥९॥

आग्नि ऐसें आहाचा। तेजा नामाचें आहे कवचा। तें परातें केलिया साच। निजतेज तें मी ॥३६॥ आणि नानाविध योनीं। जन्मोनि भूतें त्रिभुवनीं। वर्तते आहाति जीवनीं। आपुलालां ॥३७॥ एकें पवनेंचि पिती। एकें तृणास्तव जिती। एकें अन्नाधारें राहती। जळें एकें ॥३८॥ ऐसें भूताप्रति आनाना। जें प्रकृतिवशें दिसे जीवना। तें आघवाठायीं आर्भिन्ना। मीचि एक ॥३९॥ पै आदिचेनि अवसरें। विरूढे गगनाचेनि अंकुरें। जें अंतीं गिळी अक्षरें। प्रणवपटींचीं ॥४०॥ जंव हा विश्वाकार असे। तंव जें

विश्वाचिसारखें दिसे। मग महाप्रळयदशे। कैसंही नव्हे ॥४१॥

बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम्। बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥१०॥

ऐसें अनादि जें सहज। तें मी गा विश्वबीज। हें हातातळीं तुज। देइजत असे ॥४२॥ मग उघड करुनि पांडवा। जें हे आणिसील सांख्याचिया गांवा। तें ययाचा उपेगु बरवा। देखशील ॥४३॥ परी हे अप्रासंगिक आलाप। आतां असतु न बोलों संक्षेप। जाण तपियांचां ठायीं तपा तें स्वरूप माझें ॥४४॥

बलं बलवतां चाहं कामरागविवर्जितम्। धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ ॥११॥

बळियांमार्जीं बळा तें मी जाणें अढळा। बुद्धिमंतीं केवळा। बुद्धि ते मी ॥४५॥ भूतांचां ठायीं कामु। तो मी म्हणे आत्मारामु। जेणें अर्थास्तव धर्मु। थोरु होय ॥४६॥ एन्हवीं विकाराचेनि पैसें। करी कीर इंद्रियांचेयाचि ऐसें। परी धर्मासि वेखासें। जावों नेदी ॥४७॥ जे अप्रवृत्तीचा अव्हांटा। सांडूनि विधीचिया निघे वाटा। तेवींचि नियमाचा दिवटा। सवें चाले ॥४८॥ कामु ऐशिया वोजा प्रवर्ते। म्हणोनि धर्मासि होय पुरतें। मोक्षतीर्थीं चें मुक्तें। संसारु भोगी ॥४९॥ जो श्रुतिगौरवाचां मांडवीं। काम सृष्टीचा वेलु वाढवी। जंव कर्मफळेंसीं पालवी। अपवर्गीं टेके ॥५०॥ ऐसा नियतु कां कंदर्पु। जो भूतां यां बीजरूपु। तो मी म्हणे बापु। योगियांचा ॥५१॥ हें एकैक किती सांगावें। आतां वस्तुजातचि

आघवें। मजपासूनि जाणावें। विकरलें असे ॥५२॥

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये। मत् एवेति तान् विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि ॥१२॥

जे सात्त्विक हन भावा। कां रजतमादि सर्वा। ते ममरूपसंभवा। वोळख तूं ॥५३॥ हे जाले तरी माझां ठायीं। परी ययामार्जीं मी नाहीं। जैसी स्वप्नींचां डोहीं। जागृति न बुडे ॥५४॥ नातरी रसाचीचि सुघटा। जैशी बीजकणिका तरी घनवटा। परी तियेस्तव होय काष्ठा। अंकुरद्वारे ॥५५॥ मग तया काष्ठाचां ठायीं। सांग पां बीजपण असे काई। तैसा मी विकारीं नाहीं। जरी विकारला दिसें ॥५६॥ पें गगनीं उपजे आभाळा। परि तेथ गगन नाहीं केवळा। अथवा आभाळीं होय सलिल। तेथ अभ्र नाहीं ॥५७॥ मग तया उदकाचेनि आवेशें। प्रगटलें तेज जें लखलखीत दिसे। तिये विजूमार्जीं असे। सलिल कायी ॥५८॥ सांगें अग्नीस्तव धूम होये। तिये धूमीं काय अग्नी आहे। तैसा विकारु हा मी नोहें। जरी विकारला असे ॥५९॥

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्। मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ॥१३॥

परी उदकीं झाली बाबुळी। ते उदकातें जैसी झांकोळी। कां वायांचि आभाळीं। आकाश लोपे ॥६०॥ हां गा स्वप्न हें लटिकें म्हणों ये। परि निद्रावशें बाणलें होये। तंव आठवु काय देत आहे। आपणपेयां ॥६१॥ हें असो डोळ्यांचें। डोळांचि पडळ रचे। तेणें देखणेंपण डोळ्यांचें। न गिळिजे कायि ॥६२॥ तैसी हे माझीच बिंबली। त्रिगुणात्मक साउली। कीं मजचि आड वोडवली। जवनिका

जैसी ॥६३॥ म्हणऊनि भूतें मातें नेणती। माझींच परी मी नव्हती। जैसी जळींचीं जळीं न विरती।
मुक्ताफळें ॥६४॥ पै पृथ्वीयेचा घटु कीजे। सर्वेचि पृथ्वीसि मिळे जरी मेळविजे। एन्हीवीं तोचि आग्निसं
सिजे। तरी वेगळा होय ॥६५॥

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया। मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥१४॥

तैसें भूतजात सर्वा हे माझेचि कीर अवयव। परि मायायोगें जीव। दशे आले ॥६६॥ म्हणोनि
माझेचि मी नव्हती। माझेचि मज नोळखती। अहंममताभ्रांती। विषयांध झाले ॥६७॥ आतां महदादि हे
माझी माया। उतरोनियां धनंजया। मी होईजे हें आया। कैसेनि ये ॥६८॥ जिये ब्रह्माचळाचां आघाडां।
पहिलिया संकल्पजळाचा उभडा। सर्वेचि महाभूतांचा बुडबुडा। साना आला ॥६९॥ जे सृष्टिविस्ताराचेनि
वोघें। चढत काळकलनेचेनि वेगें। प्रवृत्तिनिवृत्तीचीं तुंगें। तटें सांडी ॥७०॥ जे गुणघनाचेनि वृष्टिभरें
भरली मोहाचेनि महापूरें। घेऊनि जात नगरें। यमनियमांचीं ॥७१॥ जे द्वेषाचां आवर्ती दाटत। मत्सराचें
वळसे पडत। माजी प्रमदादि तळपत। महामीन ॥७२॥ जेथ प्रपंचाचीं वळणें। कर्मा कर्माचीं वोभाणें
वरी तरताती वोसाणें। सुखदुःखांचीं ॥७३॥ रतीचिया बेटा। आदळती कामाचिया लाटा। जेथ जीवफेन
संघाटा। सेंघ दिसे ॥७४॥ अहंकाराचिया चळिया। वरि मदत्रयाचिया उकळिया। जेथ विषयोर्मीच्य
आकळिया। उल्लाळे घेती ॥७५॥ उदोअस्ताचे लोंढे। पाडीत जन्ममृत्युचे चोंढे। जेथ पांचभौतिक

बुडबुडे। होती जाती ॥७६॥ संमोह विभ्रम मासे। गिळित धैर्याचीं आविसें। तेथ देव्हडे भोंवत वळसे।
अज्ञानाचे ॥७७॥ भ्रांतीचेनि खडुळें। रेवले आस्थेचे अवगाळे। रजोगुणाचेनि खळाळें। स्वर्गु गाजे
॥७८॥ तमाचे धारसे वाडा। सत्त्वाचें स्थिरपण जाडा। किंबहुना हे दुवाडा। मायानदी ॥७९॥ पै
पुनरावृत्तीचेनि उभडें। झळंबती सत्यलोकींचे हुडे। घायें गडबडती धोंडे। ब्रह्मगोळकाचे ॥८०॥ तया
पाणियाचेनि वहिलेपणें। अझुनी न धरिती वोभाणें। ऐसा मायापूर हा कवणें। तरिजेल गा ॥८१॥ येथ
एक नवलावो। जो जो कीजे तरणोपावो। तो तो अपावो। होय तें ऐक ॥८२॥ एक स्वयंबुद्धीचां बाहीं।
रिगाले तयांची शुद्धीचि नाहीं। एक जाणिवेचां डोहीं। गर्वेचि गिळिले ॥८३॥ एकीं वेदत्रयाचिया
सांगडी। घेतलिया अहंभावाचिया धोंडी। ते मदमीनाच्या तोंडीं। सगळेचि गेले ॥८४॥ एकीं वयसेचें
जाड बांधले। मग मन्मथाचिये कासे लागले। ते विषयमगरीं सांडिले। चघळुनियां ॥८५॥ आता
वृद्धाप्याचिया तरंगा। माजीं मतिभ्रंशाचा जरंगा। तेणें कवळिजताती पै गा। चहूंकडे ॥८६॥ आणि
शोकाचां कडा उपडत। क्रोधाचां आवर्ती दाटत। आपदागिधीं चुंबिजत। उधवला ठायीं ॥८७॥ मग
दुःखाचेनि बरबटें बोंबले। पाठीं मरणाचिये रेवे रेवले। ऐसे कामाचिये कासे लागले। ते गेले वायां
॥८८॥ एकीं यजनक्रियेची पेटी। बांधोनि घातली पोटीं। ते स्वर्गसुखाचां कपाटीं। शिरकोनि ठेले
॥८९॥ एकीं मोक्षीं लागावयाचिया आशा। केला कर्मबाह्यांचा भरंवसा। परि ते पडिले वळसां।
विधिनिषेधांचां ॥९०॥ जेथ वैराग्याची नाव न रिगे। विवेकाचा तागा न लगे। वरि कांहीं तरों ये योगें।

* तरा विपायें तो ॥९१॥ ऐसें जीवाचिये आंगवणें। इये मायानदीचें उतरणें। हें कासयासारिखें बोलणें। *
 * म्हणावें पां ॥९२॥ जरी अपथ्यशीळा व्याधी। कळे साधूसी दुर्जनाची बुद्धि। कीं रागी सांडी रिद्धी। *
 * आली सांती ॥९३॥ जरी चोरां सभा दाटे। अथवा मीना गळु घोटे। नातरी भेडा उलटे। विवसी जरी *
 * ॥९४॥ पाडस वागुर करांडी। जरी मुंगी मेरु वोलांडी। तरी मायेची पैलथडी। देखती जीव ॥९५॥ *
 * म्हणऊन गा पंडुसुता। जैसी सकामा न जिणवेचि वनिता। तैसी मायामय हे सरिता। न तरवे जीवां *
 * ॥९६॥ येथ एकचि लीला तरले। जे सर्वभावे मज भजले। तयां ऐलीच थडिये सरलें। मायाजळ *
 * ॥९७॥ जयां सद्गुरु तारु पुढें। जे अनुभवाचिये कासे गाढे। जयां आत्मनिवेदनतराडें। आकळलें *
 * ॥९८॥ जे अहंभावाचें वोझें सांडुनी। विकल्पाचिया झुळकां चुकाउनि। अनुरागाचा निरु ताउनी। *
 * पाणिढाळु ॥९९॥ जया ऐक्याचिया उतारा। बोधाचा जोडला तारा। मग निवृत्तीचिया पैल तीरा। *
 * झेंपावले जे ॥१००॥ ते उपरतीचां वांवीं सेलत। सोहंभावाचेनि थावें पेलत। मग निघाले अनकळिता। *
 * निवृत्तितटीं ॥११॥ येणें उपायें मज भजले। ते हे माझी माया तरले। परि ऐसे भक्त विपाडले। बहुवस *
 * नाही ॥१२॥

* न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः। माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ॥१५॥ *

* जे बहुतां एका अवांतरा। अहंकाराचा भूतसंचारा। जाहला म्हणोनि विसरा। आत्मबोधाचा ॥३॥ *

* ते वेळीं नियमाचें वस्त्र नाठवे। पुढीले अधोगतीची लाज नेणवे। आणि करितात जें न करावें। वेदु *
 * म्हणे ॥४॥ पाहें पां शरीराचिया गांवा। जयालागीं आले पांडवां। तो कार्यार्थु आघवा। सांडुनियां ॥५॥ *
 * इंद्रियग्रामींचे राजबिदीं। अहंममतेचिया जल्पवादीं। विकारांतरांची मांदी। मेळविताती ॥६॥ *
 * दुःखशोकांचां घाई। मारिलियाची सेचि नाहीं। हें सांगावया कारण काई। जे ग्रासिले माया ॥७॥

* चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन। आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥१६॥ *

* म्हणोनि ते मातें चुकले। आइकां चतुर्विध मज भजले। जिहीं आत्महित केलें। वाढतें गा ॥८॥ *
 * तो पहिला आर्तु म्हणिजे। दुसरा जिज्ञासु बोलिजे। तिजा अर्थार्थी जाणिजे। ज्ञानिया चौथा ॥९॥ *
 * तेथ आर्तु तो आर्तीचेनि व्याजें। जिज्ञासु तो जाणावयाचिलागीं भजे। तिजेनि तेणें इच्छिजे। अर्थसिद्धि *
 * ॥११०॥ मग चौथियाचां ठायीं। कांहींचि करणें नाहीं। म्हणोनि भक्तु एकु पाहीं। ज्ञानिया जो *
 * ॥११॥

* तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते। प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ॥१७॥

* जे तया ज्ञानाचेनि प्रकाशें। फिटलें भेदाभेदांचें कडवसें। मग मीचि जाहला समरसें। आणि *
 * भक्तुही तेवींचि ॥१२॥ परि आणिकांचिये दिठी नावेक। जैसा स्फटिकुचि आभासे उदक। तैसा *
 * ज्ञानी नव्हे कौतुक। सांगतां तो ॥१३॥ जैसा वारा कां गगनीं विरे। मग वारेपण वेगळें नुरे। तेविं भक्त *
 * हे पैज न सरे। जरी ऐक्या आला ॥१४॥ जरी पवन हालवूनि पाहिजे। तरी गगनावेगळा देखिजे।

एन्हवीं गगन तो सहजें। असे जैसें ॥१५॥ तैसें शरीरें हन कर्में। तो भक्त ऐसा गमे। परी अंतरें
प्रतीतिधर्में। मीचि जाहला ॥१६॥ आणि ज्ञानाचेनि उजिडलेपणें। मी आत्मा ऐसें तो जाणे। म्हणऊनि
मीही तैसेंचि म्हणें। उचंबळला सांता ॥१७॥ हा गां जीवापैलीकडिली खुणे। जो पावोनि वावरोंही
जाणे। तो देहाचेनि वेगळेपणें। काय वेगळा होय ॥१८॥

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्। आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ॥१८॥

म्हणोनि आपुलालिया हिताचेनि लोभें। मज आवडे तोही भक्त झोंबे। परी मीचि करी वालभें।
ऐसा ज्ञानिया एकु ॥१९॥ पाहें पां दुभतेयाचिया आशा। जगचि धेनूसि करीताहे फांसा। परि दोरेंवीण
कैसा। वत्साचा बळी ॥१२०॥ कां जे तनुमनुप्राणें। तें आणिक कांहींचि नेणे। देखे तयातें म्हणे। हे
मायचि कीं माझी ॥१२१॥ तें येणें मानें अनन्यगती। म्हणूनि धेनूही तैसीचि प्रीती। यालागीं लक्ष्मीपती।
बोलिले साच ॥१२२॥ हें असो मग म्हणितलें। जे कां तुज सांगितलें। तेही भक्त भले। पढियंते आम्हां
॥१२३॥ परि जाणोनियां मातें। जो पाहों विसरला मागौतें। जैसें सागरा येऊनि सरिते। मुरडावें ठेलें
॥१२४॥ तैसी अंतःकरणकुहरीं उपजली। जयाची प्रतीतिगंगा मज मिनली। तो मी हें काय बोली।
फार करूं ॥१२५॥ एन्हवीं ज्ञानिया जो म्हणिजे। तो चैतन्यचि केवळ माझें। हें न म्हणावें परि काय
कीजे। न बोलणें बोलों ॥१२६॥ जे तो विषयांची मोट झाडी। मार्जी कामक्रोधांचीं सांकडीं। चुकावूनि
आला पाडी। सद्वासनेचिया ॥१२७॥ मग साधुसंगें सुभटा। उजू सत्कर्माचिया वाटा। अप्रवृत्तीचा

अव्हांटा। डावलूनि ॥१२८॥

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते। वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥१२९॥

आणि जन्मशतांचा वाहतवणा। तेविंचि आस्थेचिया न लेचि वाहणा। तेथ फलहेतूचा उगाणा।
कवणु चाळी ॥१२९॥ ऐसा शरीरसंयोगाचिये राती। मार्जी धांवतां सडिया आयती। तंव कर्मक्षयाची
पाहती। पाहांट जाली ॥१३०॥ तैसीच गुरुकृपाउखा उजळली। ज्ञानाची वोतपली पडली। तेथ
साम्याची ऋद्धि उघडली। तयाचिये दिठी ॥१३१॥ ते वेळीं जयाकडे वास पाहे। तेउता मीचि तया
एकु आहे। अथवा निवांत जरी राहे। तरी मीचि तया ॥१३२॥ हें असो आणिक कांहीं। तया सर्वत्र
मीवांचूनि नाहीं। जैसें सबाह्य जळ डोहीं। बुडालिया घटा ॥१३३॥ तैसा तो मजभीतरीं। मी तया
आंतुबाहेरीं। हें सांगिजे बोलवरी। तैसें नव्हे ॥१३४॥ म्हणोनि असो हें यापरी। तो देखे ज्ञानाची
वाखारी। तेणें संसरलेनि करी। आपु विश्व ॥१३५॥ हें समस्तही श्रीवासुदेवो। ऐसा प्रतीतिरसाचा
वोतला भावो। म्हणोनि भक्तांमार्जी रावो। आणि ज्ञानिया तोचि ॥१३६॥ जयाचिये प्रतीतीचां
वाखौरां। पवाडु होय चराचरा। तो महात्मा धनुर्धरा। दुर्लभु आथी ॥१३७॥ येर बहु जोडती किरीटी।
जयांचीं भजनें भोगासाठीं। जे आशातिमिरें दृष्टी। मंद जाले ॥१३८॥

कामैरस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः। तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥१३९॥

आणि फळाचिया हांवा। हृदयीं कामा जाला रिगावा। कीं तयाचिये घसणी दिवा। ज्ञानाचा गेला

॥३९॥ ऐसे उभयतां आंधारीं पडले। म्हणोनि पासींचि मातें चुकले। मग सर्वभावे अनुसरले। देवतांतरां
॥१४०॥ आधींच प्रकृतीचे पाइका वरी भोगालागीं तंव रंका। मग तेणें लोलुप्यें कौतुका कैसे भजती
॥४१॥ कवणी तिया नियमबुद्धि। कैसिया हन उपचारसमृद्धि। कां अर्पण यथाविधि। विहित करणें
॥४२॥

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति। तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥२१॥

पैं जो जिये देवतांतरां। भजावयाची चाड करी। तयाची ते चाड पुरी। पुरविता मी ॥४३॥
देवोदेवीं मीचि पाहीं। हाही निश्चय त्यासि नाहीं। भाव ते ते ठायीं। वेगळाला धरी ॥४४॥

स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते। लभते च ततः कामान् मयैव विहितान् हि तान् ॥२२॥

मग श्रद्धायुक्ता। तेथिंचें आराधन जें उचित। तें सिद्धीवरी समस्त। वर्तों लागे ॥४५॥ ऐसें जेणें
जें भाविजे। तें फळ तेणे पाविजे। परी तेंही सकळ निपजे। मजचिस्तव ॥४६॥

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्। देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ॥२३॥

परी ते भक्त मातें नेणती। जे कल्पनेबाहेरी न निघती। म्हणोनि कल्पित फळ पावती। अंतवंत
॥४७॥ किंबहुना ऐसे जें भजना। तें संसाराचेंचि साधना। येर फळभोग तो स्वप्ना। नावभरी दिसे
॥४८॥ हें असो परौतें। मग हो का आवडे तें। परि यजी जो देवतांते। तो देवत्वासीचि ये ॥४९॥ येर

तनुमनप्राणीं। जे निरंतर माझेयाचि वाहणीं। ते देहाचां निर्वाणीं। मीचि होती ॥१५०॥

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः। परं भावमजानन्तो ममाव्ययमनुत्तमम् ॥२४॥

परी तैसें न करिती प्राणिये। वायां आपुलां हिती वाणिये। पै पोहताती पाणियें। तळहातींचेनि
॥५१॥ नाना अमृताचां सागरीं बुडिजे। मग तोंडा कां वज्रमिठी पाडिजे। आणि मनीं तरी आठविजे।
थिल्लरोदकातें ॥५२॥ हें ऐसें काइसेया करावें। जें अमृतींही रिगोनि मरावें। तें सुखें अमृत होऊनि
कां नसावें। अमृतामार्जी ॥५३॥ तैसा फळहेतूचा पांजरा। सांडूनिया धनुर्धरा। कां प्रतीतिपाखीं
चिदंबर। गोसाविया नोहावें ॥५४॥ जेथ उंचावतेनि पवाडें। सुखाचा पैसारु जोडे। आपुलेनि सुरवाडें।
उडों ये ऐसा ॥५५॥

तया उमपा माप कां सुवावें। मज अव्यक्ता व्यक्त कां मानावें। सिद्ध असतां कां निमावें।
साधनवरी ॥५६॥ परी हा बोल आघवा। जरी विचारीजतसे पांडवा। तरी विशेषें या जीवां। न चोजवे
गा ॥५७॥

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः। मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥२५॥

कां जे योगमायापडळें। हे जाले आहाती आंधळे। म्हणोनि प्रकाशाचेनिहि देहबळें। न देखती
मातें ॥५८॥ एन्हीं मी नसें ऐसें। कांहीं वस्तुजात असे। पाहें पां कवण जळ रसें। रहित आहे ॥५९॥
पवन कवणातें न शिवेचि। आकाश कें न समायेचि। हें असो एक मीचि। विश्वीं असें ॥६०॥

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन। भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ॥२६॥

येथें भूतें जियें अतीतलीं। तियें मीचि होऊनि ठेलीं। आणि वर्तत आहाति जेतुलीं। तींही मीचि ॥६१॥ भविष्यमाणें जियें हीं। तींही मजवेगळीं नाहीं। हा बोलचि एन्हवीं कांहीं। होय ना जाय ॥६२॥ दोराचिया सापासी। डोंबा बडी ना गव्हाळा ऐसी। संख्या न करवे कोणहासी। तेवीं भूतांसि मिथ्यत्वे ॥६३॥ ऐसा मी पंडुसुता। अनुस्यूत सदा असतां। यां संसार जो भूतां। तो आनें बोलें ॥६४॥

इच्छा द्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत। सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यान्ति परंतप ॥२७॥

आतां थोडी ऐसी। गोठी सांगिजेल परियेसीं। जें अहंकारतनूंसी। वालभ पडिलें ॥६५॥ तें इच्छा हे कुमारी जाली। मग ते कामाचिया तारुण्या आली। तेथ द्वेषेंसीं मांडिली। वराडिक ॥६६॥ तया दोघांस्तव जन्मला। ऐसा द्वंद्वमोह जाला। मग तो आजेन वाढविला। अहंकारें ॥६७॥ जो धृतीसि सदां प्रतिकूळ। नियमाही नागवे सळु। आशारसें दोंदिलु। जाला सांता ॥६८॥ असंतुष्टीचिया मदिरा। मत्त होवोनी धनुर्धरा। विषयांचां वोवरां। विकृतीसी असे ॥६९॥ तेणें भावशुद्धीचिया वाटे। विखुरले विकल्पाचे कांटे। मग चिरिले अव्हांटे। अप्रवृत्तीचे ॥१७०॥ तेणें भूतें भांबावलीं। म्हणोनि संसाराचिया आडवामार्जीं पडिलीं। मग महादुःखाचां घेतलीं। दांडेवरी ॥७१॥

येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम्। ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥२८॥

ऐसे विकल्पाचे वांयाणे। कांटे देखोनि सणाणे। जे मतिभ्रमाचें पासवणें। घेतीचिना ॥७२॥ उजू एकनिष्ठतेचां पाउलीं। रगडूनि विकल्पाचिया भालीं। महापातकांची सांडिली। अटवी जिहीं ॥७३॥ मग पुण्याचे धांवा घेतले। आणि माझी जवळीक पातले। किंबहुना ते चुकले। वाटवधेयां ॥७४॥

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये। ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम् ॥२९॥

एन्हवीं तरी पार्था। जन्ममरणाची निमे कथा। ऐसिया प्रयत्नातें आस्था। विये जयांची ॥७५॥ तयां तो प्रयत्नुचि एके वेळे। मग समग्रें परब्रह्म फळे। जया पिकलेया रसु गळे। पूर्णतेचा ॥७६॥ तेवेळीं कृतकृत्यता जग भरे। तेथ अध्यात्माचें नवलपण पुरे। कर्माचें काम सरे। विरमे मन ॥७७॥ ऐसा अध्यात्मलाभ तया। होय गा धनंजया। भांडवल जया। उद्यमीं मी ॥७८॥ तयातें साम्याचिये वाढी। ऐक्याची सांदे कुळवाडी। तेथ भेदाचिया दुबळवाडी। नेणिजे तो ॥७९॥

साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः। प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः ॥३०॥

जिहीं साधिभूता मातें। प्रतीतीचेनि हातें। धरुनि आर्धिदैवातें। शिवतलें गा ॥१८०॥ जया जाणिवेचेनि वेगें। मी आर्धियज्ञु दृष्टी रिगे। ते तनूचेनि वियोगें। विन्हये नव्हती ॥८१॥ एन्हवीं आयुष्याचें सूत्र विघडतां। भूतांची उमटे खडाडता। काय न मरतयाहि चित्ता। युगांतु नोहे ॥८२॥ परी नेणों कैसें पें गा। जे जडोनि गेले माझिया आंगा। ते प्रयाणींचिया लगबगा। न सांडितीच मातें ॥८३॥ एन्हवीं तरी जाणा। ऐसे जे निपुण। तेचि अंतःकरण। युक्त योगी ॥८४॥ तंव इये शब्दकुपिकेतलीं। नोडवेचि

* अवधानाची अंजुळी। जे नावेक अर्जुन तये वेळीं। मागांचि होता ॥८५॥ जेथ तद्ब्रह्मवाक्यफळें *
 * जियें नानार्थरसें रसाळें। बहकाते आहाती परिमळें। भावाचेनि ॥८६॥ सहज कृपामंदानिळें। कृष्णदुमाचीं *
 * वचनफळें। अर्जुनश्रवणाचिये खोळे। अवचित पडिलीं ॥८७॥ तियें प्रमेयाचींच हो कां वळलीं। कीं *
 * ब्रह्मरसाचां सागरीं चुबुकळिलीं। मग तैसींच का घोळिलीं। परमानंदें ॥८८॥ तेणें बरवेपणें निर्मळें। *
 * अर्जुना उन्मेषाचे डोहळे। घेताति गळाळे। विस्मयामृताचे ॥८९॥ तिया सुखसंपत्ति जोडलिया। मग *
 * स्वर्गा वाती वांकुलिया। हृदयाचां जीवीं गुतकुलिया। होत आहाती ॥९०॥ ऐसें वरचिलीचि बरवा। *
 * सुख जावों लागलें फावा। तंव रसस्वादाचिया हांवा। लाहो केला ॥९१॥ झाकरी अनुमानाचेनि *
 * करतळें। घेऊनि तियें वाक्यफळें। प्रतीतिमुखीं एके वेळे। घालूं पाहिलीं ॥९२॥ तंव विचाराचिया *
 * रसना न दाटती। परी हेतूचांहि दशनीं न फुटती। ऐसें जाणोनि सुभद्रापती। चुंबीचिना ॥९३॥ मग *
 * चमत्कारला म्हणे। इयें जळींचीं मा तारांगणें। कैसा झकविलों असलगपणें। अक्षरांचेनि ॥९४॥ इयें *
 * पदें नव्हती फुडिया। गगनाचियाचि घडिया। येथ आमुची मति बुडिया। थाव न निघे ॥९५॥ वांचूनि *
 * जाणावयाची कें गोठी। ऐसें जीवीं कल्पूनि किरीटी। तियें पुनरपि केली दृष्टी। यादवेन्द्रा ॥९६॥ मग *
 * विनविलें सुभटें। हां हो जी यें एकवाटें। सातही पदें अनुच्छिष्टें। नवलें आहाती ॥९७॥ एन्हवीं *
 * अवधानाचेनि वहिलेपणें। नाना प्रमेयांचे उगाणे। काय श्रवणाचेनि आंगणें। बोलों लाहाती ॥९८॥ *

* परि तैसें हें नोहेचि देवा। देखिला अक्षरांचा मेळावा। आणि विस्मयाचिया जीवा। विस्मयो जाला *
 * ॥९९॥ कानाचेनि गवाक्षद्वारें। बोलाचे रश्मी अभ्यंतरे। पाहेना तंव चमत्कारें। अवधान ठकलें ॥१००॥ *
 * तेविंचि अर्थाची चाड मज आहे। ते सांगतांही वेळु न साहे। म्हणूनि निरूपण लवलाहें। कीजो देवा *
 * ॥१०१॥ ऐसा मागील पडताळा घेउनी। पुढां आर्भिप्रावो दृष्टी सूनी। तेविंचि माजि शिरवुनी। आर्ती *
 * आपुली ॥१०२॥ कैसी पुसती पाहें पां जाणिव। भिडेचि तरी लंघों नेदी शिंवा। एन्हवीं कृष्णहृदयासि *
 * खेवं। देवों सरला ॥१०३॥ अगा गुरुतें जें पुसावें। तें येणें मानें सावध होआवें। हें एकचि जाणें आघवें। *
 * सव्यसाची ॥१०४॥ आतां तयाचें तें प्रश्न करणें। वरी सर्वज्ञा हरीचें बोलणें। हें संजयो आवडलेपणें। *
 * सांगेल कैसें ॥१०५॥ तिये अवधान द्यावें गोठी। बोलिजेल नीट मन्हाटी। जैसी कानाचे आधीं दृष्टी। *
 * उपेगा जाये ॥१०६॥ बुद्धीचिया जिभा। बोलाचा न चाखतां गाभा। अक्षरांचियाचि भांबा। इंद्रियें जिती *
 * ॥१०७॥ पहा पां मालतीचे कळे। घ्राणासि कीर वाटले परिमळें। परि वरचिली बरवा काइ डोळे। सुखिये *
 * नव्हती ॥१०८॥ तैसें देशियेचिया हवावा। इंद्रियें करिती राणिव। मग प्रमेयाचिया गांवा। लेसा जाइजे *
 * ॥१०९॥ ऐसेनि नागरपणें। बोलु निमे तें बोलणें। ऐका ज्ञानदेव म्हणे। निवृत्तीचा ॥११०॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विज्ञानयोगोनाम सप्तमोऽध्यायः॥

(श्लोक ३०; ओव्या २१०)

ॐ श्रीसच्चिदानन्दार्पणमस्तु।